1912

धर्म्म-ग्रन्थ-मालाका छठा ग्रन्थ।

राजपूत-बाला।

श्रीयुत प्रमथनाथ चट्टोपाध्याय प्रणीत

"राजपूतेर मेये"

नामक

बङ्गला पुस्तकका हिन्दी अनुवाद।

—※—

अनुवादक—

पण्डित धर्मानन्द,

भूतपूर्व "समन्वय"—सम्पादक।

—※—

मिलनेका पता—

धर्म्म-ग्रन्थ-माला कार्यालय,

बड़ाबाजार, कलकत्ता।

प्रथम संस्करण] १९१२ [मूल्य १॥)

प्रकाशक—

पं० धर्मानन्द,

मजेड़ा,

नैनीताल ।

मुद्रक—

श्रीसूर्य्यकुमार भान्ना,

रुद्रप्रिन्टिंग वर्क्स,

७ गौरमोहन मुखार्जी स्ट्रीट, कलकत्ता ।

प्रेमोपहार।

धर्म्म-ग्रन्थ-मालाके नियम ।

——:o:——

१ इस सीरीजके निकालनेका मुख्य उद्देश्य साहित्य-सेवा है ।

२ आरम्भमें केवल ॥) आठ आना प्रवेश फी भेजकर अपना नाम स्थायी ग्राहकोंमें दर्ज करा लेनेसे सीरीजसे निकलने वाले एवं निकले हुए सब ग्रन्थ पौनी कीमतमें दिये जायेंगे ।

३ प्रवेश फी वापस नहीं दी जायगी ।

४ इस सीरीजसे हर प्रकारके उत्तमोत्तम ग्रन्थ, धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक, शिक्षाप्रद उपन्यास, गल्प, प्रहसन, नाटक इत्यादि देशकालके अनुसार प्रकाशित किये जायेंगे ।

५ पुस्तक निकलने की सूचना स्थायी ग्राहकोंका १० दिन पूर्व दी जायेगी, तदुपरान्त पुस्तक उनको सेवामें पौनी कीमतमें वी० पी० भेजी जायेंगी ।

६ यद्यपि जनसाधारणके लिये प्रवेश फी ॥) आठ आना मात्र है, किन्तु राजा, रईस और प्रतिष्ठित व्यक्तियोंसे उनके सम्मानार्थ प्रवेश फी अधिक होगी । उनके लिये प्रवेश फी क्या होगी, यह उन्हींकी रुचिपर निर्भर है ।

७ पुस्तकें ग्राह्य और उपादेय होंगी ।

व्यवस्थापक,

धर्म्म-ग्रन्थ-माला कार्य्यालय,

कलकत्ता

समर्पण ।

सर्वगुणालंकृत, साहित्यप्रेमी अपने परम स्नेही

मित्र श्रीमान् बाबू महादेवलालजी खेतान

के

कर-कमलोंमें यह पुस्तक

सादर समर्पित है ।

धर्मानन्द ।

राजपूत-बाला ।
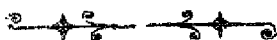
प्रथम खण्ड ।

पहला परिच्छेद ।

"बालिका, तुम कौन हो ?"

"मैं एक राजपूत-बाला हूं ।"

"यह तो पूरा परिचय नहीं हुआ ।"

"क्या यह यथेष्ट परिचय नहीं हुआ, सैनिक ?"

"(कुछ सोचकर) सत्य कहती हो. राजपूतका परिचय ही राजपूत है । किन्तु मैं कौन हूं, क्या यह जानती हो ?"

"यह जानने की आवश्यकता नहीं है, यवन !"

"मुझे आश्रय देनेके कारण तुमपर कैसी विपत्ति आ सकती है, क्या यह जानती हो ?"

"कुछ भी जानने की आवश्यकता नहीं है। आश्रयार्थी को आश्रय देनेके कारण विधाताका समस्त कोप मुझपर भले ही आ पड़े, परन्तु राजपूतकी कन्या होकर मैं आश्रयार्थी को कभी विमुख नहीं कर सकती।"

"किन्तु तुम रमणी हो।"

"रमणी कह कर क्या तुम मेरी शक्तिमें सन्देह करते हो? तो तुम हिन्दू-ललना को पहिचानते नहीं—जानते नहीं—हिन्दुओंके इतिहाससे परिचित नहीं हो—इसीलिए राजपूत लड़की की शक्तिपर तुम्हारा यह सन्देह है। क्या तुमने नहीं सुना है, कि हिन्दू-नारीकी शक्तिके निकट शमन भी पराभव स्वीकार कर, भयसे अवनत मस्तक हो, पलायन करता है? क्या तुम जानते नहीं कि—यही हिन्दू रमणी त्रिभुवनमें अप्रतिद्वन्द्वी वीर भीष्मके नाशका कारण हुई थी? अभी थोड़ा ही समय हुआ है, महाप्रतापशाली सम्राट अलाउद्दीनने, महारानी पद्मिनीके रूपपर मोहित होकर, चित्तौर पर आक्रमण किया—लाखों रुपये व्यय किये, लाखों मनुष्योंका बलिदान दे, लाखों हृदयोंके गाढ़े रक्तसे चित्तौरको रंग डाला। पर पाया क्या? केवल शत सहस्र हिन्दू रमणियोंका देह भस्म! एक अभूतपूर्व अलौकिक उपदेश! किसीको भी देखनेमें वह समर्थ नहीं हुआ। सैनिक, क्या इतनेपर भी नहीं समझ सकते कि, हिन्दू रमणी शक्तिहीना नहीं, शक्तिपूर्णा है। एक एक कर ज़रा इतिहासके पृष्ठ उलट कर देखो—देखोगे—प्रत्येक पृष्ठमें हिन्दू रम-

माँकी उज्वल मूर्त्ति देदीप्यमान है। देखोगे—वह मूर्त्ति पुण्यमयी, शक्तिमयी, निर्मल और प्रकाशमान है। सैनिक! सुनो—विपद्—भीम-भैरव स्वरसे गर्जन करती हुई, समुद्र तरंगके समान विकराल राक्षसकी भाँति, मेरा ग्रास करनेको यदि दौड़ आवे और यदि संसारकी समस्त शक्तियाँ एकत्रित होकर मेरे विरुद्ध खड़ी हो जायें—तब भी मैं तुमको आश्रय दूंगी। इस प्रासादमें, अथवा मेरे पिताकी जमींदारीकी सीमामें, मेरे जीवित रहते, कोई भी तुम्हारा बाल बाँका नहीं कर सकता।

बालिकाका मुंह अभावनीय, अचिन्तनीय, अतुलनीय पुण्य-प्रतिभा और दैवी-ज्योतिसे परिदीप्त हो कर उज्वल श्री और परमोज्वल तेजसे उद्‌भासित हो उठा।

उसी भक्ति-प्रदीप्ता, सौन्दर्य-तृप्ता, विश्व-शान्तिदायिनी, विश्व-जननी रूपिणी, शक्तिशालिनी देवीमूर्त्तिके दर्शनसे यवन-का हृदय भक्ति और श्रद्धासे परिपूर्ण हो गया। इसके पश्चात् रोमांचित होकर वह अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उसकी ओर केवल देखता ही रह गया।

यह देखकर हास्य रंजित अधरसे बालिकाने बड़े ही कोमल स्वरमें कहा,—"विस्मयसे मेरे मुखकी ओर क्या देख रहे हो अतिथि?"

रुंधे हुए कम्पित कण्ठसे अतिथि बोला—"कैसे, किस भाषामें किस प्रकार समझाऊं कि क्या देख रहा हूं! किन्तु जो देखा, है वह इस जीवनमें पहले कभी नहीं देखा था,—शेष जीवनमें

देखूँगा यह आशा भी नहीं है—जो देखा है, वह इस जीवनमें भूलूँगा भी नहीं। क्या देखा? देखा, सैकड़ों शशांकोंसे भी उज्वल दिव्य-स्वरूपा एक मातृमूर्त्ति अभयका हाथ बढ़ाकर मेरे सम्मुख खड़ी है। उसके मुखपर पवित्रताका पुण्य हिल्लोल, हृदयमें धर्म्मका कल्लोल—हाथमें शान्तिकी अरोक धारा—नयनोंमें स्नेह-सिन्धु का अविरल उच्छ्वास! यह मूर्त्ति जीवनमें कभी नहीं देखी—मानो ध्यानमग्ना—जीवित देवी-प्रतिमा है। हिन्दू रमणी मानवी नहीं—देवी हैं। माता, बंगेश्वर दाऊद खां घुटने टेक कर, आज तुमको माता सम्बोधन कर अभिनन्दन करता है,—माता, उसको सन्तानका अधिकार दो—माता, उसको अपने मंगल आशीषसे शक्तिशाली बना दो—शान्तिरूपी बाहु फैला कर उसके दुष्ट कर्मों की कालिमाको धो दो!"

"क्या तुम हो नवाब दाऊद खां हो?"

"हां—माता, मैं ही वह अभागा अत्याचारी पापियोंका आदर्श, नवाब दाऊद खां हूं।"

"तो भी तुम मेरी सन्तान हो। सन्तान उठो, उठो वत्स। भगवानके चरणोंमें प्रार्थना करो, मनुष्य बनो, रणमृत्यु लाभ करो, मुगल-विजयी हो!"

आश्चर्य चकित होकर नवाबने विस्मयसे कहा, "मुगल-विजयी हो?—माता, यह आशा मृगतृष्णाके समान बहुत दूर चली गई है। आज मैं मुगल सेनापतिके निकट पराजित हुआ हूं। मेरी छत्र-भङ्ग सेना किस ओर चली गई है, मैं

नहीं जानता। शृगालके समान प्राण रक्षार्थ मैं आज तुम्हारे निकट आश्रयार्थी हूँ।

मुझको ढूंढनेके लिये पीछेसे प्रधान सेनापति मनाइम खां दैत्यके समान आ रहा है। बंगालके अनेक ज़मींदारोंने भी मुगलोंका साथ दिया है, मुगल इस समय असीम शक्तिशाली हैं। मेरे पास सैन्य नहीं है, धन नहीं है, दुर्ग नहीं है,—सर छिपानेके लिए एक स्थान भी नहीं है,—मैं मुगल-विजयी हूंगा! असम्भव! असम्भव है!"

"असम्भव! असम्भव वाक्य वीरोंके मुंहमें, मनुष्यके मुंहमें शोभा नहीं पाता! प्रबल आकांक्षा मनुष्य को सफलता प्रदान करती है। यदि तुममें तन्मयता—एकाग्रता है, तो तुम पुनः सब-कुछ प्राप्त करोगे।"

"माता! तुम्हारे वाक्योंने हृदयमें आशाकी वीणा बजा दी है, शत सहस्र नवीन आशाओंसे हृदय भर रहा है, नेत्रोंके सम्मुख बंगाल का स्वर्ण सिंहासन देख रहा हूं। तुम देवी हो, तुम्हारा वचन निष्फल नहीं होगा। मैं विजयी हूंगा। आज यदि बच गया, आज यदि मनाइमखांके हाथसे उद्धार पा गया, तो पुनः मुगलोंको बंगालसे दूर भगाऊंगा, बङ्गालका सिंहासन पुनः पठानोंका होगा, पुनः पठानोंके जयनादसे बङ्गाल का आकाश और पृथ्वी कम्पित होगी।"

"ऐसा ही हो नवाब, तुम्हारी साधना सफल हो।"

"माता! यदि तुम्हारी वाणी सत्य हुई, यदि पुनः बङ्गालका

सिंहासन प्राप्त कर सका, तो इन सब कृतघ्न जमींदारोंको ऐसा दण्ड दूंगा, जो विभीषिकाके समान बङ्गालके इतिहासमें अंकित रहेगा।"

नवाबके ऐसे वाक्यसे बालिकाका हृदय कांप उठा, किंचित कम्पित स्वरसे बालिकाने कहा, "नवाब! मेरी एक प्रार्थना है, एक भिक्षा मांगती हूं, क्या दोगे? मैं माता हूं, तुम सन्तान हो। तुम्हारे निकट क्या भिक्षा नहीं पाऊंगी!"

"यह कैसी पहेली है माता—सन्तानको जननीके लिये अदेय क्या है? इस सिंहासनहीन, मुकुटहीन, दीन भिक्षुक सन्तानके निकट तुम्हारी क्या भिक्षा है? निष्कपट भावसे कहो—यह जीवनदान देकर भी तुम्हारी भिक्षा पूर्ण करूंगा।"

"नवाब! मेरे पिता जमींदार हरिनारायण मुगलोंका पक्ष लेकर युद्ध करनेके लिये सेना-सहित मुगल शिविरमें गये हैं, यदि तुम पुनः राज्य प्राप्त करो, यदि तुम्हारे इस घनघोर दुःख निशाका अन्त होकर उज्वल प्रकाशमय प्रभातका उदय हो, यदि तुम्हारे चरणोंमें गिरकर बङ्गाल अभिवादन करे, तो नवाब—"

"समझ गया माता, और अधिक कुछ नहीं कहना होगा।—"

"——माता, तुम्हारी सन्तान नवाब दाऊदखां, विलासी, मद्यपान करनेवाला, अत्याचारी होनेपर भी अकृतज्ञ नहीं है, वह पशु नहीं है, तुम्हारे इस ऋणका विनिमय नहीं है,—शपथ खा

कर कहता हूं, कि तुम्हारे पिताके चरणोंमें कंकड़ भी नहीं चुभेगा, चुभने भी न दूंगा।"

"और मैं भी शपथपूर्वक कहती हूं पुत्र,—आजीवन तुमको पुत्रके समान देखूंगी, आजीवन तुम्हारी शुभ कामना करूंगी, आजीवन तुम्हारी विपदावस्थामें यथासाध्य सहायता करूंगी। यदि—भगवान न करें, यदि कभी विपद पड़ें, यदि उस समय इस दुःखिनी जननीको सहायता की आवश्यकता हो, जान लो, हृदयका शेष रक्त बिन्दु देकर भी सहायता करूंगी।"

"माता, पुनः तुम्हारा अभिवादन करता हूं।"

दूसरा परिच्छेद।

राजमहलके जमींदारोंमें श्रेष्ठ राजपूत जमींदार हरिनारायण हैं। हरिनारायणकी जमींदारी विशाल—प्रताप भी विपुल है। मुगल सेनापतिके आह्वानसे निज अधीनस्थ और वेतन-भुक्त दश सहस्र पैदल सेना और दो सहस्र अश्वारोही सैन्य लेकर मुगलोंकी सहायताके लिए हरिनारायण गये हैं।

जमींदार हरिनारायण बुद्धिमान हैं, उन्होंने जान लिया था—मुगलोंके प्रति भाग्यलक्ष्मी प्रसन्न है। इसीलिए उन्होंने मुगलोंका पक्ष लिया।

सशस्त्र पहरेदारोंसे परिवेष्ठित, जमींदार हरिनारायणकी

विराट अट्टालिका, अत्यन्त मनोरम नयन रञ्जन भावसे सुशोभित है। आस पास अन्य कुटी या इमारत नहीं है। दक्षिणकी ओर उनके सरदार, अथवा सेनापतिका और उसके कुछ ही दूर अवसर-प्राप्त वृद्ध सैनिक यादवलालका घर है। इनके अतिरिक्त और कोई घर निकटमें नहीं हैं।

भूस्वामी हरिनारायण, प्रतापशाली, अत्यन्त अत्याचारी जमींदार हैं। उनके हृदयमें दया नहीं, नयनोंमें कोमलता नहीं, मुंहमें हास्य नहीं है। उनका हृदय पत्थरके समान कठोर, अन्धकारके समान कलुष-कालिमासे पूर्ण—नेत्र बिजलीके तेजके समान उज्वल—तीव्र, तीक्ष्ण, करुणाहीन, मुंह जलदाकाशके समान भीषण, गम्भीर, भयावह है।

राजा हरिनारायण अधेड़ वयसके हैं। साधारण दृष्टिसे देखनेमें अच्छे हैं। संसारमें उनके पन्द्रह सालकी एकमात्र कन्या उर्मिलाके अतिरिक्त और कोई नहीं है। हरिनारायणके हृदयमें जो कुछ दया-माया है, वह इसी कन्याके ऊपर समर्पित है।

कन्या उर्मिला फूलके समान सुन्दर, चन्द्रमाके समान हास्यमयी, नदीके समान तरंगमयी है। कण्ठस्वर उसका ऐसा है मानो प्रकृति हंस रही हो, अंग-सञ्चालन बिजलीके खेलके समान है, यही सरल, शुभ्र, कुसुम-कोमल कमलको हरिनारायण हृदयसे चाहते हैं। उनका गाम्भीर्य, कठोरता सब इस एक क्षुद्र बालिकाके निकट परास्त होती है।

तीसरा परिच्छेद ।

—⊛⊛⊛—

"स्वामी !"

"माया !"

"अत्यन्त कष्टके साथ मायाने दोनों रोगशीर्ण, शुष्क, निष्प्रभ नेत्रोंसे स्वामी दिलीपसिंहकी ओर देखकर कहा, "स्वामी !"

"माया !"

"कहती हूं !"

"क्या कहती हो माया ?"

"मेरा पुत्र अमर प्रसाद !"

"वह जल्द ही आयगा।"

"युद्ध क्या अभी समाप्त नहीं हुआ !"

"युद्ध समाप्त हो गया है।"

"कौन विजयी हुआ ?"

"हम."

"तब अमरके आनेमें इतनी देर क्यों हो रही है ?"

दिलीप निरुत्तर।

उत्तर न पाकर स्नेहपरायणा जननीके हृदयमें सन्देह उत्पन्न

हुआ। नेत्रोंमें अश्रुबिन्दु दिखाई देने लगे—कम्पित एवं शंकित स्वरसे मायावतीने कहा, "तब—क्या मेरा अमर इस संसारमें नहीं है !"

उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी।

आकाशकी एक ओर नवयुवक चन्द्र असंख्य हीरोंसे परिपूर्ण नीले आसनमें मृदु मुसकान करने लगा।

मृत्युपथगामिनी सह-धर्म्मिणीके नयनाश्रु दिलीपसिंहको व्यथित करने लगे। कातर कण्ठसे दिलीपसिंहने कहा, "माया, माया, मैं तुम्हारी निष्पाप देहका स्पर्श करके कहता हूं—हमारा अमर स्वस्थ, सबल और अक्षत देहसे जीवित है।"

एक दीर्घ निःश्वास त्याग कर मायावतीने कहा, "सत्य कहिये प्रभु, तो उसके विलम्ब का क्या कारण है ?"

मृदु अर्द्धोच्चारित कण्ठसे दिलीपने उत्तर दिया, "वह पठानोंके कारागृहमें है।"

बाँध टूट गया—पुनः एक प्रबल जलधारा बहने लगी। वेदना-कातर-हृदयसे दिलीपसिंहने कहा,—"माया, मैं तुम्हारा स्वामी हूं, स्वामीके वाक्योंमें यदि तुम्हारा बिन्दुमात्र भी विश्वास है—तो सुनो, मैं कहता हूं, वह शीघ्र आवेगा। मुगल सेनापति रथी श्रेष्ठ मनाइम खां बन्दीको मुक्त करनेके लिए स्वयं गये हैं, अबतक वह मुक्त हो गया होगा। मालूम होता है, कि शीघ्र आनेके लिए उसने वनमार्ग का अवलम्बन किया होगा। इसलिए कहता हूं—वह शीघ्र आयेगा।"

किञ्चित आशापूर्ण हृदयसे मायाने कहा, "किन्तु—"

"किन्तु क्या माया ?"

"किन्तु ऐसा जान पड़ता है, अब उसको न देख सकूंगी।"

वाक्यके अन्तमें मायाने एक हृदय-भेदी दीर्घ निःश्वास परित्याग किया।

"क्यों माया, ऐसी बात क्यों कहती हो ?"

"क्यों कहती हूं, तुम समझते नहीं हो प्रभु! देखते नहीं हो—कालके काले कठोर हस्तस्पर्शसे मेरी समस्त देह कालिमासे रंजित हो गई है। देहकी ज्योति, लावण्य-माधुरी सब उसी अन्धकार में डूब गई है। अग्निने दग्ध कर दिया है—अब केवल भस्म शेष है। नदीका जल सूख गया है—अब केवल उसकी रेखा शेष है। फल पुष्प गिर गये हैं—अब केवल नीरस पत्रहीन वृक्ष शेष है। मेरा रूप-रस-गन्ध सब चला गया है—केवल निर्वाणोन्मुख जीवन-दीप शेष है, उसके बुझनेमें भी अब अधिक विलम्ब नहीं है नाथ!"

"मुझे छोड़कर कहां, किस जगत्‌में जाओगी माया! तुमको अकेली जाने नहीं दूंगा। अपने हृदयके साथ तुमको मिला रखा है, मेरे सर्वाङ्गमें तुम मिश्रित हो—मेरा जीवन-प्रदीप तुम्हारे ही गुण-गरिमा, सौन्दर्य सुषमासे जल रहा है, यदि दीपक बुझेगा, तो दोनों ही दीपक एकसाथ बुझेंगे।"

स्वामीके अकृत्रिम प्रेमभरे वाक्यसे मृतप्राय स्त्रीके कम्पित हृदयमें आनन्दकी लहरें उठने लगीं। विपुल आनन्दके वेगसे

उसका गला भर आया। हृदय आनन्दकी लहरको धारण करनेमें समर्थ नहीं हुआ, वह अश्रुरूपसे, नयन-पथसे, वेगके साथ प्रवाहित होने लगा।

दोनों चुप हैं। आभ्यन्तरमें कलरव—किन्तु नीरव। हृदयमें तूफान उठ रहा है—किन्तु शब्दहीन।

सहसा घोड़ेकी पद्ध्वनिसे चौंककर मायाने कहा,

"यह तो—"

"क्या माया!"

"घोड़ेकी टाप—मेरा अमर आ रहा है, जाओ, जाओ, शीघ्र प्रधान फाटक खोलकर, उसको छातीसे लगाकर ले आओ।"

घोड़ेकी टापोंकी आहट दिलीपके कानोंमें भी पहुंची, आनन्द-पूर्ण हृदयसे, शीघ्र जाकर उन्होंने प्रधान फाटक खोला—किन्तु अमर प्रसाद नहीं आये। आशासे दिलीप चारों ओर देखने लगे,—कोई कहीं भी दिखाई नहीं दिया—दिखाई दिया, केवल पृथ्वीके वक्षःस्थल पर आघात करनेवाला आकाश—और प्रत्येक वृक्षके नीचे—उसीकी अंधेरेकी अङ्कित प्रतिमूर्त्ति—और दिखाई दिया वृक्षोंकी शोभा बढ़ानेवाले खद्योतोंका बिजलीके समान मन्द मुसकान।

निराशासे दिलीपसिंहके दोनों पैर मानो जमीनमें धस गये दोनों हाथोंसे छाती दबाकर एकबार उन्होंने ऊपरकी ओर देखा, रुंधे हुए स्वरसे एकबार कहा, "ईश्वर! मालूम होता है—

तुम्हारे समान कठोर, कठिन, निर्मम, निर्दय और कोई नहीं है। अब धर्मका नाम,—तुम्हारा नाम, इस जीवनमें उच्चारण नहीं करूंगा, बस। केवल तुम्हारा नाम है, किन्तु कार्य कुछ नहीं है। तुम मिथ्या हो।"

"ऐसी घृणित बात मत कहो, पौत्र!"

फिरकर देखा तो दिलीपसिंहने अपने निकट वृद्ध यादवलालको देखा।

यादवलाल छोटे बड़े सबके दादा हैं। ग्रामके लोग उनकी भक्ति, श्रद्धा और सम्मान करते हैं। यथार्थमें वे भक्तिके पात्र हैं भी। जहां दुःख-विपत्तिने किसीको घेरा, वहां यादवलाल भगवानका शुभ आशीर्वाद लेकर पहुंच जाते हैं। यादवलालके आगमनसे विपद्ग्रस्त व्यक्ति देहमें शक्ति, हृदयमें शान्ति अनुभव करता है, उसका हृदय आशा और उत्साहसे भरजाता है—दुःख दूर हो जाता है। वही आदरणीय, सर्वगुणालंकृत, पड़ोसी यादवलालको देखकर, दिलीपने एक ठण्डी सांस लेकर कहा, "दादा! मनुष्यका धैर्य आकाशके समान विस्तृत, समुद्रके समान असीम नहीं है। पृथ्वीसे विदा ग्रहणेच्छुक इस भग्न हृदयसे और कितना सहन हो सकता है।"

"क्या हुआ पौत्र, इतने उतावले क्यों हो रहे हो? तुम्हारी स्त्री कैसी है?"

"अभी जीवित है,—किन्तु अधिक नहीं जियेगी। यदि अमर आ जाता,—दो चार दिन और जी जाती। विपद्ग्रस्त

व्यक्ति जिसप्रकार बारम्बार व्याकुलतासे ईश्वरका नामोच्चारण करता है,—उसी प्रकार माया केवल 'अमर' 'अमर' कहती है, और उसके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहती है,—बीच बीचमें मर्मभेदी दीर्घनिश्वास त्याग करती है! उस मलीन करुणाभरे दृश्यको देखकर मेरी छाती फटी जाती है। घोड़ेकी टाप सुनकर, अमरके आनेकी आशाकी व्याकुलतासे, मैं यहां आया, किन्तु अमर नहीं आया। दादा, इसीलिए कहता हूं, और कितना सहा हो सकता है।"

"किन्तु यही सहनशीलता मनुष्यको मनुष्य बनाती है। विद्यार्थी—शिक्षककी ताड़ना, बेतोंकी मार तथा अपमान सहन करता है, कितनी ही बार असफल होकर फिर विद्यालाभ करता है। योद्धा कितने उद्यम, सैकड़ों शस्त्रोंकी चोटसे देह क्षत विक्षत करता है, देहका रक्त बहाकर योद्धा होता है। कवि कितने परिश्रम, कितनी साधना, कितनी रात्रियोंतक निद्रा त्याग करके, कितनी ही बार असफल होकर, समालोचकोंके तप्त लोहेके समान कसौटीकी चोटसे जर्जरित होनेके पश्चात् कवि होता है। इन सबके मूलमें धैर्यरूप महापरीक्षा रहती है। छात्र यदि शिक्षकके अपमानसे अधीर हो जाय, योद्धा यदि चोटकी यातना सहन न कर सके, कवि यदि एकबारकी असफलतासे ही अधीर होकर लेखनी परित्याग कर दे, तो संसारमें "मनुष्य" शब्द भाषासे उठ जाय। प्रत्येक मनुष्यकी हृदयकी दृढ़ताकी परीक्षा धैर्यसे होती है।"

जो वज्रसम कठोर बिपदको छातीसे लगा सकता है, संसार के सैकड़ों प्रलोभनोंका अविचलित चित्तसे परिहार कर सकता है—ऐश्वर्यसे अधीर न होकर जो उसी ऐश्वर्यसे जीवकी पूजा कर सकता है, सैकड़ों शोक-दुःख, सहस्रों चिन्ता, कष्ट जो प्रसन्नतापूर्वक सहन कर सकता है, वही मनुष्य है—वही ईश्वर की प्रिय सन्तान है। सिद्धि और कीर्त्ति दोनो भाई बहन हैं—

बात काटकर विस्मयके साथ दिलीपसिंहने कहा,—"दादा, यह क्या है ?"

"क्या पौत्र ?"

"यह जो बहुतसे घोड़ोंकी टाप सुनाई दे रही है।"

"हां सुनाई दे रही है।"

"मानो रमणीके कण्ठस्वरके साथ शस्त्रोंकी झन्कार है।"

"ऐसा ही सुनाई दे रहा है।"

"यह शब्द मानो हमारे प्रभु राजा हरिनारायणकी अट्टालिका से आ रहा है।"

"मेरा अनुमान भी यही है।"

"रमणीका कण्ठस्वर भी प्रभुकी कन्याके समान है।"

"सहसा इतने अश्वारोही कहांसे आये ? कदाचित राजा लौट आये हैं।"

"यह शस्त्रोंकी ध्वनि क्यों हो रही है, राजाके आने पर आनन्दध्वनि न होकर, प्रभु कन्याकी यह कातर वाणी क्यों सुनाई दे रही है ? दादा, राजाके प्रासादमें दो चार पहरेदारोंके

अतिरिक्त और कोई नहीं है। राजा मेरे ऊपर ही अपने प्रासाद और राजकन्याकी रक्षाका भार अर्पण कर निश्चिन्त होकर युद्ध-क्षेत्रको गये हैं। किन्तु मृतप्राय पत्नीको त्याग कर मैं एकबार भी राजकन्याके सम्मुख न जा सका। यह—यह—पुनः—पुनः प्रभु कन्याकी कातर कण्ठध्वनि सुनाई दे रही है। दादा, क्या करूं—प्रभु-कन्याकी कातर कण्ठध्वनि विपत्तिका समाचार ला रही है। मैं राजपूत हूं, राजाके अन्नसे देह पुष्ट हुआ है, एक ओर प्रभु-कन्याके उद्धारार्थ धर्मकी पुकार है, दूसरी ओर शय्यामें मृतप्राय पत्नी है, कर्त्तव्यका बन्धन,—क्या करूं—क्या करूं, किस मार्गका अवलम्बन करूं,—आज मेरे इस महा सङ्कटके समयमें, इस प्रश्नकी क्या मीमांसा करूं, मुझे मार्ग दिखा दीजिए!"

बातें करते करते दोनों उस कमरेके दरवाजेपर जा पहुंचे, जिसमें माया रोगशय्यापर पड़ी थी।

इसी समय वायु तरंगके समान क्षीण मृदुकण्ठसे मायाने कहा, "मैं मार्ग दिखलाऊँगी, यदि भगवानका शाप न ले कर आशीर्वाद लेना चाहते हो, यदि तुम राजपूत हो, यदि राजपूतोंका इतिहास भूल नहीं गये हो, यदि कृतघ्नताके घनघोर कालिमासे आत्माको कलुषित करनेकी इच्छा नहीं है, यदि राजपूत नामसे घृणा उत्पन्न करना नहीं चाहते,—तो तुम विपद्ग्रस्त प्रभुकन्याकी सहायताके लिए इसी क्षण चले जाओ। तुम्हारा मस्तक कीर्त्तिके मुकुटसे, देह यशके अलङ्कारसे,

आत्मा धर्मके आभूषणसे अलंकृत होगी, तुम्हारे नामके स्मरणसे मनुष्योंमें तेजका आविर्भाव होगा—जाओ स्वामी,—इसी समय जाओ—लाखों स्त्री, लाखों साम्राज्योंकी अपेक्षा, स्वर्गकी अपेक्षा, विपद्ग्रस्तकी रक्षा करना, करोड़ों गुण श्रेष्ठ हैं—जाओ —स्वामी जाओ, बिजलीके समान जाओ।"

"ठीक कहती हो आदर्शरूपिणी, कर्त्तव्यमयी गृहिणी, तुम धन्य हो। दादा जाता हूं—तुम्हारे हाथ अपना जीवन-प्रदीप सौंप जाता हूं—इसको बुझने मत देना।" एक लम्बी लकड़ी लेकर असीम शक्तिशाली वृद्ध दिलीप बिजलीके समान अदृश्य हो गये।

चौथा परिच्छेद।

"तुम कौन हो?"

"मैं मुसाफिर हूं।"

"इतनी रातिमें यहां क्यों आये हो?"

"आश्रयके लिये।"

"यहां आश्रय नहीं मिलेगा, जाओ अन्यत्र चेष्टा करो।"

क्रोधित हो कर मुसाफिरने पहरेदारसे पूछा, "तुम क्या क्षत्रिय हो?"

"हां, मैं क्षत्रिय हूं।"

"तुम्हारे स्वामी कौन हैं?"

"क्षत्रिय, कभी अन्य जातिका दासत्व नहीं करते मुसाफिर!"

"और क्षत्रिय कभी अतिथिको विमुख नहीं करते पहरेदार! तुम्हारा स्वामी पशु है, इसीलिये उसने अपने सेवकोंको भी वैसा ही बना लिया है।"

"क्या, क्या कह रहे हो मुसाफिर?" शब्दोंके साथ साथ पहरेदारकी तलवार म्यानसे निकल कर चन्द्र-किरणोंमें चमकने लगी।

मुसाफिर चकित हो कर कुछ दूर हट गया।

क्रोधको दमन करके पहरेदारने कहा,—"तुम मुसाफिर हो। किन्तु सावधान, द्वितीयबार इस वाक्यका उच्चारण न करना, अन्यथा तुम्हारा सिर धड़से जुदा कर दूंगा। मेरा स्वामी क्षत्रिय है या नहीं; उनके सेवकमें क्षत्रिय तेज है या नहीं—तुम्हारा शोणित पृथ्वीमें यह लिख देगा।"

इसी समय दूसरे मंजिलके एक प्रकाशमय कमरेके किवाड़ कुछ शब्दके साथ खुले।

मुसाफिरने एक सुन्दरी बालिकाको खिड़कीमें देखा।

कोयलके समान कोमल कण्ठसे रमणीने कहा, "पहरेदार?"

"माता!"

"इतनी रात्रिमें क्या गोलमाल हो रहा है ?"

"कुछ नहीं माता, यह मुसाफिर वृथा बकवाद कर रहा है, —जानेको कहनेपर भी जाता नहीं है।"

"तुम क्या चाहते हो मुसाफिर,—आश्रय ?"

"नहीं।"

"तब ?"

"खोज करना चाहता हूं।"

"खोज ! किसकी खोज, मुसाफिर ?"

"जो पूछूंगा—उसका सत्य उत्तर दोगी ? मिथ्या तो नहीं कहोगी ?—"

"राजपूतकी लड़की मिथ्या बात नहीं जानती, अभीतक मिथ्याभाषण सीखा नहीं है। तुम यवन हो, इसीलिये ऐसा प्रश्न करते हो !"

"तब सत्य कहो, क्या भागे हुए पठानपति दाऊदखांको तुमने आश्रय दिया है ?"

"दिया है।"

अत्यन्त विस्मयके साथ मुसाफिरने कहा, "आश्रय दिया है ?"

"हां आश्रय दिया है। इसमें विस्मय करने योग्य कुछ नहीं हैं मुसाफिर ! राजपूत पुरुष अथवा रमणी जिसदिन शरणागतको विमुख करेंगे—उस दिनसे यह चन्द्र—ये तारे आकाशमें नहीं हंसेंगे, गम्भीर मर्म-यातनासे अंधकारकी गोदमें

मुंह छिपालेंगे। किन्तु तुम्हें इस बातसे क्या प्रयोजन मुसाफिर ?"

"कुछ प्रयोजन है, अन्यथा आपसे इस रात्रिमें वृथा बकवाद क्यों करता !"

"क्या प्रयोजन है ?"

"मैं जानना चाहता हूं—नबाब दाऊदखांको तुम त्याग सकोगी या नहीं ?"

"तुम मुसाफिर हो, तुमको ऐसा प्रश्न करनेका क्या अधिकार है ? तुम कौन हो ?"

"मैं मुगलोंके सहकारी सेनापति राजा टोडरमलका अनुचर हूं।"

"तब अपने स्वामी मुगल-सेनापति टोडरमलको भेज देना। इस प्रश्नका उत्तर उन्हींको दूंगी।"

"तो उत्तर दीजिए।"

मुसाफिरने अपनी लम्बी दाढ़ी, श्वेत केश और नील वर्णका पहिनावा दूर कर दिया।

देखते देखते मुसाफिर दीप्त मार्तण्डके समान प्रभाशाली, अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित, योद्धा वेशधारी, उन्नत, बलिष्ठ, वीर पुरुषमें परिणत हो गया।

गम्भीर स्वरसे वीर पुरुषने कहा, "नारी, मैं ही राजा टोडरमल हूं। अब कहो, मेरे प्रश्नका क्या उत्तर है ?"

रमणीने निर्भीक हृदयसे कहा, "मेरा उत्तर, मैं रमणी

होने पर भी—राजा टोडरमलके समान मुझमें अब भी हीनता प्रवेश नहीं कर सकी। देहमें शोणित रहते राजपूत-बाला कभी किसी शरणागतको परित्याग नही करेगी।"

उत्तर सुनकर राजा टोडरमल चकित, विस्मित तथा अचम्भित हो गये। एक नारीका अतुल साहस देखकर, उसके तेज-गर्वित-वाक्य सुनकर,—उनके हृदयमें प्रशंसाकी सैकड़ों ध्वनियां उत्पन्न होने लगीं। किन्तु उनको दबाकर राजाने गम्भीर स्वरसे कहा,—"घमण्डी नारी! अब भी सोच विचारकर कार्य करो, अन्यथा बड़ी विपदमें पड़ोगी।"

"मैंने अपनी विवेक शक्ति धनके लोभसे मुसलमानोंके हाथ नहीं बेच दी है। विपद तुम्हारे लिए है—दाऊदखांको यदि नहीं पकड़ सकोगे—तुम्हारे मुगल-प्रभु अकबर रुष्ट होंगे—क्रोधित होकर लातसे अथवा कोड़ोंसे मारेंगे, अथवा वेतन घटा देंगे; इसीलिए कहती हूं महावीर! विपद तुम्हारे लिये है—मेरे लिये नहीं।"

इस समय अटल मेरु चञ्चल हो उठा। राजाके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये—कमरकी तलवार एकबार शब्द करने लगी। अत्यन्त कष्टके साथ क्रोध दमनकर राजा टोडरमलने कहा,—

"स्वेच्छासे दाऊदखांको मेरे हाथमें समर्पण नहीं करोगी तो मैं बलप्रयोग करनेको विवश हूंगा।"

"यह जानती हूं राजा!—इसलिए इतना विलम्ब—यह छद्मवेश, इतनी कहासुनीकी क्या आवश्यकता थी? बले

प्रयोग करना चाहते हो तो कर लो,—तुम्हारी जो अभिरुचि हो वही करो,—पर जीवित रहते, मैं नवाबको तुम्हारे हाथ किसी प्रकार समर्पण नहीं करूंगी।"

"अच्छा।"

राजाने सीटी बजाई। इसी समय प्राय: पचास तलवार-धारी राजपूत अश्वारोही योद्धाओंने राजाके सम्मुख आकर सम्मानके साथ अभिवादन किया।

एक योद्धा एक सुसज्जित बड़े घोड़ेकी रास पकड़कर राजाके निकट आया। राजा अपने घोड़ेपर सवार हो गये। वृक्षोंके अन्धकारसे चाँदनीके प्रकाशमें आकर आनन्दसे घोड़ोंने हिनहिनाते हुए चारों दिशाओंको कम्पायमान कर दिया।

घोड़ेपर सवार होकर राजा टोडरमलने अपने सैनिकोंको लक्ष्यकर कहा,—"सैनिकगण, इस अट्टालिकामें भागे हुए नवाब दाऊदखांने अपनेको छिपा रखा है। अट्टालिकामें प्रवेश कर उसको ढूंढ़ो,—यदि कोई बाधा उपस्थित करे—शस्त्रोंके प्रयोगसे उस बाधाको दूर करो। जाओ—"

उच्चकण्ठसे रमणीने कहा,—"बेणू—"

"माता!"

"तुम कितने पहरेदार हो?"

"दस आदमी।"

"अच्छा, ये लोग यहां बड़ा कोलाहल कर रहे हैं, इनको भगाओ। जिससे वे राज-पूत-शौर्यकी दीवारसे रक्षित धर्म अट्टा-

लिकामें प्रवेश करनेमें समर्थ न हों। तलवार फेंककर लकड़ी लेलो। यदि तुम राजपूत हो, यदि निर्मल—ऊष्ण शोणितका प्रवाह तुम्हारे अंगमें है—तो पीठको अस्त्रकी चोटसे अङ्कित मत करना। यदि तुम दस मनुष्य आधी मुगल सेनाको मारनेमें समर्थ नहीं होओगे, तो समझ लेना—तुम मनुष्य नहीं, राजपूत शक्ति और वीरत्व खोकर इन्हीं दासोंके समान हो गये हो।"

जोरके साथ लम्बी लकड़ी जमीनमें मारकर वेणूने अभिमानपूर्वक कहा, "माता निश्चिन्त रहो, हम मनुष्य हैं।"

वेणू आगे बढ़कर यवन सेनाके सम्मुख खड़ा हुआ। उसके पीछे उसके अन्यान्य अनुचर खड़े हो गये।

राजाके आदेशसे मुगल-सैन्यने वेणू और उसके साथियों पर आक्रमण किया।

लकड़ी और तलवार चलने लगीं,—लकड़ियोंके भीषण आघातसे यवनोंके हाथोंसे तलवारें गिरने लगीं।

राजाका मुंह आकाशके समान गम्भीर हो गया,—ललारमें चिन्ताकी रेखा अङ्कित हो गई।

महावीर, महाधुरन्धर, महा पराक्रमी, बहु-युद्ध-विजयी, वीरपूज्य राजा टोडरमल इन सामान्य, अति सामान्य दस लकड़ीधारी वीरोंका महा विक्रम देखकर आश्चर्यान्वित और विचलित हुए।

• राजाने सोचा,—उन्मत्त हाथी अथवा बल-सम्पन्न केशरीसे

समान, निर्भीक ये दस वीर और अधिक समयतक इसी भावसे अपने प्राणोंको तुच्छ समझकर यदि युद्ध करेंगे तो हमारी पराजय असम्भव नहीं है। राजा असावधान हो गये। आज यदि वे इन दस वीरोंके निकट पराजित होंगे तो समस्त देशकी अपकीर्त्ति उनके जीवनकी सफलताके सोपानको चूर्ण कर देगी।

सहसा राजाने लकड़ीधारी एक वीरको लक्ष्य कर अपना घोड़ा बिजलीकी गतिके समान तेज दौड़ाया। घोड़ा बड़े वेगके साथ जाकर उस वीरके ऊपर गिरा। उस प्रबल धक्केसे वह लठैत दूर जा गिरा, साथही साथ राजा और घोड़ा—ये दोनों ही भूमिमें गिर पड़े।

होनहार जानकर राजा, घोड़ेके भूमिमें गिरनेके पूर्व ही कूद पड़े।

यह घटना देखकर उभय पक्ष विस्मयके साथ क्षण भरके लिये किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो कर खड़े रह गये।

राजाने नाममात्रको भूमिमें गिरे हुए उस व्यक्तिके हाथकी गिरी हुई लकड़ी उठा कर एक निकटस्थ व्यक्तिके लकड़ीवाले हाथमें प्रचंड बलके साथ मारी। इस आघातसे लकड़ी उसके हाथसे गिर पड़ी। राजाने पलमात्र भी विलम्ब न कर दूसरी लकड़ी अपनी सेनाकी ओर फेंकदी।

अब अन्यान्य-वीर भी चैतन्य हुए। राजाके मस्तकको लक्ष्यकर एक साथ आठ डण्डे उठे।

राजा भी लकड़ी चलानेमें अनभ्यस्त अथवा अशिक्षित नहीं

थे, बिजलीकी गतिके समान प्रचण्ड वेगसे उन्होंने प्रत्याक्रमण किया। राजाके सैनिकोंने भी त्रिकोणाकार घेरा डाल कर पूर्ण उद्यम तथा पूर्ण तेजसे उनके ऊपर आक्रमण किया।

कुछ कालके पश्चात् राजाके आक्रमणसे और दो वीर घायल हुए। और दो डण्डे राजाके हाथ लगे। राजाने अब तलवार फेंक कर अपने सैनिकोंको उन डण्डोंको ग्रहण करनेका आदेश दिया। राजाके तीन सैनिकोंने तलवार फेंक कर डण्डे हाथमें ले लिये।

कितनी ही देर तक इसी प्रकार आक्रमण होते रहे।

लठैत वीरोंके हाथ क्रमशः थकने लगे, लकड़ी चलानेकी गति क्षीण हो गई। किन्तु फिर भी कोई पीछे नहीं हटा।

परन्तु पहरेदार अधिक काल तक युद्ध नहीं कर सके— राजाके सैनिकोंकी तलवार और लकड़ियोंके आघातसे आहत हो कर वे एक एक करके धराशायी हो गये।

विजयी राजा टोडरमल अब अपनी सेनाके साथ प्रधान फाटककी ओर अग्रसर हुए।

इसी समय चिल्लाकर उस रमणीने कहा,—

"शरणागतकी रक्षा करनेके लिये, राजपूत-बालाकी सत्य की रक्षा करनेके लिये, यहां क्या एक भी मनुष्य नहीं है?"

गंभीरतासे उत्तर मिला, "है माता!"

रमणीने फाटकके निकट अवसर-प्राप्त-सरदार वृद्ध दिलीप सिंहको देखा।

सरदारने अभिमानपूर्वक कहा, "आज्ञा कीजिए, माता।"

"स्वामिभक्त सरदार, यह आज्ञा नहीं—मृत्यु है। इन सशस्त्र पचास मुगल-राजपूत सेनाके साथ युद्ध करना और मृत्युको वरण करना एक ही बात है।"

"माता, यह देह तुम्हारे अन्नसे परिपुष्ट और स्नेहसे परिवर्द्धित हुई है, मेरा 'अपना' जो कुछ है, वह सब तुम्हारा ही है। जो तुम्हारी सेवामें जाता है, जावे। आज्ञा दो माता, तुम्हारे आदेशसे प्राणोंको बलि देकर प्राणमें प्राणकी प्रतिष्ठा करूंगा।"

"राजपूत—गरिमाकी पूर्ण मूर्त्ति, कर्त्तव्यपरायण सरदार,—तो इस अट्टालिकाके द्वारकी रक्षा करो, अपनी प्रभु-कन्याकी इसी अन्तिम आज्ञाका पालन करो, कुछ समयके पश्चात् पिता ससैन्य आकर उपस्थित होंगे—विलम्ब मत करो, हृदयमें भीष्मकी दृढ़ताको स्मरण कर, राजपूतकी महिमासे मुगल-सैन्यके ऊपर आक्रमण करो।"

वृद्ध दिलीपसिंहने मुगल-सैन्यपर आक्रमण किया।

आश्चर्यजनक दृश्य है, एक ओर सशस्त्र पचास वीर, दूसरी ओर एक पलितकेश वृद्ध।

वृद्ध की अन्य किसी ओर दृष्टि नहीं है—विषाद नहीं है—हाथोंमें शान्ति नहीं, निराशा नहीं। मानो असुरके समान वह बली है।

वृद्धके विक्रमको देखकर राजाको आश्चर्य हुआ,—उच्चकण्ठसे राजाने कहा, "वृद्ध शान्त होओ,—क्यों वृथा प्राण खोते हो।"

"देहमें प्राण रहते मेरी लकड़ी अपना कार्य न छोड़ेगी। यह वृथा नहीं है राजा, यह राजपूतोंकी कीर्त्ति-स्मृतिकी प्रतिष्ठा है।"

उत्तर सुनकर राजाको अत्यधिक आश्चर्य हुआ। उच्च-स्वरसे राजाने फिर कहा—"सैन्यगण वृद्धके ऊपर कोई चोट मत करो—लकड़ी छीन लो।"

बहुत समयके उपरान्त मुगलोंके आक्रमणसे दिलीपसिंह थक गये। वृद्धके थके हुए हाथसे लकड़ी गिर गई। मुगल वृद्धको पकड़ कर पुनः फाटककी ओर अग्रसर हुए।

सहसा एक अपूर्व दृश्यने अग्रगामी राजा टोडरमलको अग्रसर होनेसे रोका।

विस्मयके साथ राजाने फाटकके पास लम्बेकेशवाली, स्वर्णालङ्कारविभूषिता, सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रभावती, उज्ज्वल वेशधारिणी, हाथमें तीक्ष्ण तलवार लिये हुई, एक अपूर्व रमणी मूर्त्ति देखी। आश्चर्य चकित् होकर राजाने रमणीके नेत्रोंमें प्रतिहिंसाकी लपलपाती हुई अग्निकी ज्वाला—चेहरेमें दृढ़ताका प्रकाश, सर्वाङ्गमें अपूर्व दैवी ज्योति देखी।

रोमांचित हो कर राजाने देखा,—जगद्धात्री, जगज्जननी मानो आश्रितकी रक्षाके लिये हाथमें तलवार लेकर मानवी मूर्त्ति धारणकर अवतीर्ण हुई हैं। विस्मित—विह्वल टोडरमल एकटक दृष्टिसे उसे खड़े देखते रह गये। किसी सैनिककी उस मूर्तिके सम्मुख जानेका साहस नहीं हुआ।

उस प्रतिमाने वीणाकी झन्कार—मृदंगकी ध्वनिके समान मधुर अथच गम्भीर स्वरमें कहा—"राजा अब मैं आई हूं। मुझको पराजित किये बिना, इस अट्टालिकामें प्रवेश नहीं कर सकोगे।"

रुंधे हुए स्वरसे राजाने कहा—"मैं कर्त्तव्यसे बंधा हुआ हूं, स्वामीका कार्य सम्पादन करनेके लिये बाध्य हूं—फाटक छोड़ दीजिए, विवेक रमणीके ऊपर आक्रमण करनेकी अनुमति नहीं देता।"

"राजा! रमणी मैं हूं, देहधारी पुरुष तुम हो। एक भागे हुए मनुष्यको पकड़नेके लिये इतनी सेना लेकर जो आता है, वह क्या पुरुष है? और विवेक! विवेक का नाम मुंहमें न लाओ राजा,—जो अपनी स्वाधीनता, सिंहासन और अपनी स्वर्गादपि गरीयसी जन्मभूमिको, धनके लोभसे यवनोंके चरणोंमें डाल देता है,—जिसने धर्म, मोक्ष, सबको अतल लोभ-सागरमें डुबा दिया है, जो राजस्थानके वीरत्व गौरवमय अङ्कको पतित भावसे बिगाड़ना चाहता है,—राजस्थानके विशुद्ध वायु-मण्डलको कलङ्कित करके अशुद्ध करता है, यवनके चरणोंमें घुटने टेककर दासके समान आत्म-विक्रय करता है, उसके मुंहसे विवेक शब्दका उच्चारण शोभा नहीं पाता। अब वाक्योंका आडम्बर छोड़ दो,—मौखिक महत्व दिखलानेकी कुछ आवश्यकता नहीं है। आओ यवन-सेनापति! आज राजपूत-बाला की शक्ति देख जाओ।"

सहसा पोछेसे किसीने कहा—"यह क्या हो रहा है माता ?"

पोछे फिर कर रमणीने सशस्त्र दाऊदखांको देखा।

बाहर आकर दाऊदखांने कहा,—"माता ! तुम्हारी सन्तान इतनी हीन नहीं है जो जननीके प्राण-विनिमयसे अपने प्राणोंकी रक्षा करेगा। सियारके समान भाग कर, रमणीका आश्रय ग्रहण करनेपर भी मैं कापुरुष नही हूं। सोचता था, आज यदि बच गया तो इस अपमानका कलङ्क मुगलोंके शोणितसे धोऊंगा। आशा कर रहा था—पठान-साम्राज्यकी नींव ऐसी रखूंगा, जो पृथिवीके कम्पन—हिमालयके भारसे भी न हिलेगी। एक ऐसा सुविशाल राज्य स्थापन करनेकी आकांक्षा थी, जिसकी चारों ओरकी परिधिकी घोषणा समुद्र और हिमालय करते। बड़ी इच्छा थी—भागी हुई पठान सैन्यको एकत्रित कर, उसके हृदयमें नवीन शक्तिका संचार करनेके लिये, ऐसी एक विपुल शक्ति उत्पन्न करूं, जिस शक्तिके निकट समुद्र भी शान्त हो जाये। इसी आशासे भागकर तुम्हारा आश्रय लिया था। किन्तु तुम्हारी अट्टालिकामें, तुम्हारे राज्यमें अग्नि प्रज्वलित कर अपने प्राण बचाऊं—यह हीनता इस समय भी दाऊदखांके हृदयमें आश्रय नहीं पा सकती। आओ राजा ! आक्रमण करो, तुम्हारे हाथसे अवश्य बन्दी हूंगा, किन्तु हाथमें हथियार रहते बन्दित्व स्वीकार करना पठान नहीं जानते, आओ आक्रमण करो।"

दोनों भीषण युद्धमें जूझ गये—दोनों अस्त्रकुशली,—रणनीति विशारद, महा तेजशाली हैं। किन्तु रणक्षेत्रसे भागा हुआ नवाब अत्यधिक परिश्रम और मानसिक चिन्ताके कारण विशाद-ग्रस्त है। कुछही क्षणमें केसरीके समान दोनों वीरोंके प्रचण्ड संघर्षसे तलवारोंसे अग्निकी चिनगारियां निकलने लगीं।

कुछ काल तक युद्ध समान भावसे होता रहा—जय पराजयका निर्णय नहीं हो सका।

सहसा राजाकी प्रबल तलवारके प्रहारसे थके हुए नवाबके हाथसे तलवार छूटकर दूर जा गिरी।

उच्च स्वरसे राजाने कहा—"बन्दी करो।"

"बन्दी करनेकी सामर्थ्य किसमें है" कहते हुए हाथमें नंगी तलवार लेकर वही बालिका नवाबके आगे खड़ी हो गई। व्यथित हृदय और कातर कण्ठसे नवाबने कहा—"माता—इस भाग्यचक्रसे पीड़ित हतभाग्य सन्तानके लिए, क्यों अपने अमूल्य प्राण खोती हो। प्राण देकर भी अब तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकतीं। भगवान मेरी मुक्ति नहीं चाहते, तुम्हारी सैकड़ों चेष्टायें व्यर्थ होंगी—इसीलिये कहता हूं माता, अलग हो जाओ —मुगल मुझको चाहते हैं, मुझको पाकर वे सन्तुष्ट हो कर चले जायेंगे, तुम्हारे शान्ति-पूर्ण जीवन और राज्यमें फिर अग्नि प्रज्वलित नहीं होगी।"

"ज्वालामुखीके समान अग्नि जल उठे, आकाशको रंगकर

वायुको उत्तप्तकर, व्योमस्पर्शी लाल ज्वालाओंसे अग्नि प्रज्वलित होकर सागरको अपने भीषण तापसे शुष्क कर दे। विश्व-संहार मूर्त्ति लेकर प्रबल ध्वनिसे—प्रबल उच्छ्वासके साथ अग्नि प्रज्वलित हो—फिर भी शरणागतको अकेले निःशस्त्र अवस्थामें शत्रुके हाथमें देनेके लिए—राजपूत-बाला हट कर अलग खड़ी नहीं होगी। राज्य, ऐश्वर्य, सुख, शान्ति भले ही चले जांय—सब रसातलको चले जायँ—रहें केवल अपने मस्तकमें मुकुटके समान धर्मके दोनों चरण। जो देश पुण्यकी चांदनीके नीचे—धर्मकी मिट्टीसे गठित है—जिस देशके प्रत्येक पर्वतमें सामवेदकी प्रतिध्वनि होती है, जिस देशका प्रत्येक पत्थर भी पूज्य है,—जिस देशके जल-स्पर्शसे ही मुक्ति होती है—जिस देशकी शिक्षा—जिस देशकी दीक्षा—आतिथ्य, आश्रयार्थीकी रक्षा—आत्मोत्सर्ग, स्वार्थ बलिदान है—जिस देशमें देवता भी जन्म ग्रहणकर धन्य होते हैं, उसी महा पुण्यमय महिमान्वित आर्यावर्तमें मैंने जन्म लिया है। जिस देशकी रमणी धर्म रक्षार्थ प्रसन्न मुखसे भीषण अग्निको प्रियजनके समान सादर आलिङ्गन करती हुई जीवन विसर्जन करती है,—जिस देशकी रमणी स्वामी और पुत्रको अपने हाथोंसे सुसज्जित कर रणक्षेत्रको भेजती है—जिस देशकी रमणीके धार्मिक प्रभावसे भगवानके नियम परिवर्तित होते हैं,—दैवीशक्ति तेजहीन हो जाती है, उसी देशकी रमणी मैं हूं। जिस राजपूतके जीवनकी एकमात्र उपासना वीरत्व है—जिस राजपूतका मूल मन्त्र

स्वाधीनता प्राप्त करना है,—जिस राजपूतका ललाट असंख्य कीर्ति-रेखाओंसे अङ्कित है—ऐसे राजपूतकी लड़की मैं हूं। मुगलोंकी टेढ़ी भृकुटीसे अति प्राचीन नियमका परिवर्तन कर, आज मैं आश्रयार्थीको त्याग दूंगी? कदापि नहीं—हरगिज नहीं। राजा बिना मेरी हत्या किये, नवाबकी देहको कोई भी स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होगा।"

रमणीके दोनों नेत्रोंसे मानो आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं, शशांककी भाँति उज्वल मुखमण्डल और भी उज्वलतर हो उठा।

इस समय राजा अपने हृदयके आवेगको रोक नहीं सके, उच्च एवं कम्पित स्वरसे कहने लगे,—

"राजपूत ललना! तुम धन्य हो,—यह मूर्ति,—जीवनमें कभी नहीं देखी,—जन्मभर यह दृश्य हृदय-पटलपर अङ्कित रहेगा।"

"जिस राजा टोडरमलके बाहुबलसे सैकड़ों नरेश मरमिटे,—जिसके प्रतापसे सैकड़ों मुकुट राजाओंके मस्तकोंसे भूमिपर गिर पड़े,—जिसकी शक्ति देखकर समग्र भारतवर्ष स्तम्भित हो गया,—वही राजा टोडरमल तुमको माता कह कर तुम्हारे इस महत्वके निकट पराभव स्वीकार करता है। और नवाब!"

"राजा—"

"जब तुम्हारे हृदयमें इतनी उच्च आकांक्षा है, तब जाओ—अपनी शक्ति, एकाग्रता तथा दृढ़ताके सम्मिलनसे प्रबल शक्तिरूपी धनुषका निर्माण करो। हो सकेगा तो उस धनुषको तोड़ूंगा—

अन्यथा तुम्हारे वीरत्वकी पूजा करूंगा। जाओ, तुम स्वतन्त्र हो। तुम अकेले हो,—यह सेना लेकर असहाय अवस्थामें तुमको बन्दी कर अपने माथेमें कलङ्कका टीका नहीं लगाना चाहता—जाओ,—तुम मुक्त हो, स्वाधीन हो।"

भीषण उच्च स्वरसे पीछेसे यह आवाज आई, "खड़े रहो।"

सबने विस्मयके साथ सेना सहित प्रधान सेनापति मनाइन-खांको देखा। प्रधान सेनापतिने राजाके सम्मुख आकर पूर्ववत् स्वरसे पूछा,—"किसको स्वाधीनता दे रहे हो राजा, यह क्या जानते हो?"

"जानता हूं, नवाब दाऊदखांको।"

"किस अधिकारसे तुम मुगलोंके परम शत्रुको स्वाधीनता देते हो, मैं इसकी कैफियत चाहता हूं?"

"आवश्यकता होनेपर यह कैफियत दिल्लीमें सम्राटके निकट दूंगा।"

"राजा, जानते हो,—तुम मेरे अधीनस्थ सेनाध्यक्ष हो।"

"और तुम भी जानते हो सेनापति, मैं राजपूत हूं।"

"राजपूत होनेपर भी तुम मुगलोंके दास हो।"

"मैं यह अस्वीकार नहीं करता, किन्तु तुम्हारी तरह मनुष्यत्व और स्वाधीनताको जलांजलि देकर राजपूतोंने दासत्व करना अब भी नहीं सीखा है। वे दासत्वके भीतर भी स्वाधीनता चाहते हैं।"

क्रोधसे भरकर सेनापति मनाइमखाँने रक्तके समान लाल लाल आंखोंसे राजाकी ओर देखकर कहा—

"सावधान, राजा, मुंह सम्हाल कर बातें करो।"

"सेनापति! राजा टोडरमल भिक्षुक नहीं है, वह किसीके भी लाल नेत्रोंसे नहीं डरता।"

"देखता हूं तुम्हारा अभिमान बहुत बढ़ गया है। एक दिन इस अभिमानको चूर्ण कर तुम्हारे वाक्योंका उत्तर दूंगा। सिपाहियो—नवाब दाऊदखांको बन्दी करो।"

"सिपाहियो सावधान, आगे बढ़ोगे तो प्राण खोओगे। सेनापति मनाइमखां, राजा टोडरमलके वाक्य—बालक अथवा पागलका प्रलाप नहीं हैं। जिसको मुक्त कर दिया है,—सैकड़ों विघ्न बाधाओंका सामना करके भी उसकी रक्षा करूंगा। अपनी आज्ञा लौटा लो।"

"मुगलोंके प्रधान शत्रुको तुमने छोड़ दिया है—यह मैं देख नहीं सकता। मेरी आज्ञाका पालन करो, सिपाहियो।"

राजाने अब अपने वेतनभुक्त राजपूत सिपाहियोंसे कहा, "मुगल सेनाके ऊपर आक्रमण करो।"

दोनों दल आक्रमणके लिए उद्यत हो गये।

मनाइमखां स्वभावसे ही भीरु प्रकृतिके हैं। वे नाममात्रको प्रधान सेनापति थे, सब कार्य राजा टोडरमल ही करते हैं। उनके ही बाहुबलसे आज पठान परास्त हुए हैं।

मनाइमखांने सोचा था—वे प्रधान सेनापति हैं—उनके

कार्यका प्रतिवाद अथवा उनके विरुद्ध खड़े होनेका साहस राजा टोडरमल कभी नहीं करेंगे।

इस राजपूत जातिके ऊपर मनाइमखांको बड़ी ईर्षा थी, विशेष कर राजाके ऊपर। राजाको अपना सहकारी ग्रहण करनेकी इच्छा उनको कभी नहीं थी, किन्तु करते क्या? सम्राटका आदेश था।

वास्तवमें दोनों दलोंको आक्रमण करनेके लिये उद्यत देख कर सेनापतिने अपने सिपाहियोंसे कहा, "सब शान्त होओ।" इसके पश्चात् राजाकी ओर देख कर कहा, "टोडरमल! ऐसे कुसमयमें शत्रुपूर्ण बंगालमें सेनाका नाश कराकर—मुगलोंकी शक्तिको हीन करना नहीं चाहता—तुम्हारे इस अपमानका बदला दिल्लीमें लूंगा।"

"मैं भयभीत नहीं हूं—तुम यथाशक्ति बदला लेना मनाइम खां!"

पाँचवाँ परिच्छेद।

"तुमने सुना पुत्री?"

"क्या पिता?"

"पठान पराजित हुए हैं—हमने विजय प्राप्त की है।"

"सुना है।"

"और सुना है कि पठानराज दाऊदखां छद्मवेश धारण कर भाग गये हैं,—ससैन्य मुगल-सेनापति उनकी खोज करने को गये हैं।"

"यह भी जानती हूं पिता।"

"यह भी जानती हो! कैसे जाना पुत्री?"

"भाग कर नवाब दाऊदखांने—मुझसे आश्रयकी भिक्षा मांगी।"

"तुमसे आश्रयकी भिक्षा मांगी! इसके पश्चात् तुमनेही क्या उसको पकड़ा दिया?"

"नहीं पिता—"

"तब क्या किया?"

"उसको आश्रय दिया।"

"अनलरूपी शत्रुको आश्रय दिया! क्या कहती हो?"

"ठीक कहती हूं पिता, जो कहा वह सम्पूर्ण सत्य है।"

"इसके पश्चात् क्या हुआ?"

"इसके पश्चात् राजा टोडरमल नवावका अनुसन्धान करनेके लिये स्वयं उपस्थित होकर अट्टालिकामें प्रवेश करनेके लिये उद्यत हुए; मेरी आज्ञासे पहरेदारोंने उनको रोका—उन्होंने देहका शोणित प्रदान कर मेरी आज्ञाका पालन किया। किन्तु बहुतसे शत्रुओंके आक्रमणसे आहत होकर वे धराशायी हुए, तथापि कोई भी आज्ञा पालन करनेमें पराङ्मुख नहीं हुआ।" एक एक कर जब दस योद्धा भूशय्यामें सो गये,—

जब एक मनुष्य भी बाधा देनेवाला नहीं रहा, तब मैं चित्कार कर बोल उठी—"राजपूत-बालाकी सत्यकी रक्षा करनेके लिये क्या कोई भी नहीं है?" दूरसे गम्भीरतापूर्वक उत्तर मिला "है माता।" विस्मयसे देखा—वृद्ध सरदार दिलीपसिंह मेरी आज्ञा पालन करनेके लिये प्रस्तुत हैं। इस वृद्धकी स्वामि-भक्ति धन्य है। प्रभु-कन्याकी आज्ञा पालन करनेके लिये बहुत दिनोंके पश्चात् वृद्धने युवकके समान अचलभावसे खड़े हो कर असीम शक्तिके साथ लकड़ी पकड़ ली। उसकी लकड़ी चलाना देखकर मैं आश्चर्य करने लगी और विपक्षी भी चकित हुए! बहुत देर बाद, अन्तमें वृद्धके हाथसे लकड़ी गिर गई।"

"बालिका तुमने खेल करनेकी इच्छासे एक दुस्साहसका कार्य—जिसको प्रबल प्रतापशाली नरेश भी करनेमें समर्थ नहीं होते—किया है, किन्तु उस वृद्ध सरदार दिलीपने बिना सोचे समझे क्यों स्वेच्छासे अपना तथा अपने स्वामीके घरका नाश करनेके लिये प्रचण्ड शक्तिको निमंत्रित किया?—यह उसकी स्वामि-भक्ति नहीं—स्वामी-द्रोह है। इसके पश्चात् क्या हुआ?"

"इसके पश्चात् राजा पुनः अट्टालिकामें प्रवेश करनेके लिये उद्यत हुआ। अन्य उपाय कुछ न होने पर मैं स्वयं शस्त्र धारण कर फाटकमें खड़ी हो गई। इसी समय नवाबने आकर राजाके ऊपर आक्रमण किया। नवाबका सर्वाङ्ग शस्त्रोंकी

चोटसे बिंध गया, कपड़े लोहूसे सन गये, फिर भी नवाबने अद्भुत विक्रमके साथ अकेले ही राजासे युद्ध किया। तथापि मेरे प्राणोंके बदलेमें अपने प्राणोंकी रक्षा करनेके लिये किसी प्रकार सम्मत नहीं हुआ। निरुपाय हो कर, रणस्थलसे भाग जाने पर भी, नवाब वीर योद्धा है। महापराक्रमी राजाके साथ बहुत समय तक युद्ध करनेके पश्चात् नवाब निःशस्त्र हो गया। राजाने नवाबको बन्दी करनेका हुक्म दिया। मैं उस समय नवाबको अपने पीछे कर राजाके सम्मुख खड़ी हुई। राजा टोडरमल मुगलोंके दास होने पर भी महान,—उदार हैं। उन्होंने मुझको माता कह कर, मेरे निकट पराजय स्वीकार की। और मुगलोंके प्रधान और प्रबल शत्रु—सिंहासनका एकमात्र कंटक ;—नवाब दाऊदखांको मुक्त कर दिया!"

"मुक्त कर दिया-? इसके पश्चात् क्या हुआ?"

"इसके पश्चात् प्रधान सेनापति मनाइमखां यहाँ आ पहुँचे।"

"उन्होंने क्या किया?"

"उन्होंने नवाबको बन्दी करनेकी आज्ञा दी। राजा टोडरमलने भी उस आज्ञाका प्रतिवाद करनेके लिये शस्त्र धारण किया। इसके पश्चात् सेनापतिने कुछ सोचकर अपनी आज्ञा वापस लेकर रणस्थल त्याग दिया। राजा टोडरमल भी दूसरी ओर चले गये। बंगेश्वर दाऊदखां कटककी ओर चले गये।

क्रोध-कम्पित स्वरसे राजा हरिनारायणने कहा,—उर्मिला!

मातृहीना रहनेके कारण तेरा अत्यधिक आदर हुआ है, इसीलिये तेरा अभिमान बहुत बढ़ गया है; इसके परिणामस्वरूप तूने यह क्या किया है, समझती नहीं है। खाई काटकर अग्निका प्रवाह घरके बीच ले आई है! जायगा—जायगा—सब जायगा. उस अनलके प्रवाहमें ऐश्वर्य, सम्पदा, राज्य, प्राण, मान—यहां तक कि तू भी डूब जायगी! राजा टोडरमलके हाथसे उद्धार होनेपर भी सेनापति मनाइमखांकी भीषण क्रोधाग्निसे मेरा किसी प्रकार निस्तार नहीं हो सकता। इसी समय मुझको पकड़नेके लिए आज्ञा लेकर मुगल सेना आ रही होगी। अहा हा! कैसा सर्वनाश कर दिया, तूने कैसा सर्वनाश कर दिया!"

निष्फल क्रोधसे गरजते हुए राजा कमरेके बाहर चले गये।

बाहर आकर राजाने पुकारा, "बूधन!"

पहरेदार बूधनने शीघ्र आकर अभिवादन किया।

राजाने कहा, "बूधन, अभी अवसर-प्राप्त सरदार दिलीप सिंहको बन्दी करके ले आओ। और मेरे साथ अन्यत्र जानेके लिए तुम कुछ पहरेदार तैयार रहो। जलमार्गसे जाऊंगा, माझी और मल्लाहोंसे आज तैयार रहनेको कह दो—आज या कल, किस समय कहां जाऊंगा अभी निश्चय नहीं,—फिर भी तुम यात्राके लिए प्रस्तुत रहो। इस समय जाओ, दिलीपको बेड़ियोंसे जकड़ कर ले आओ।"

बूधनने मस्तक नवाकर प्रस्थान किया।

छठा परिच्छेद ।

"इस स्थानमें पालकियोंको उतारो !"

भयके साथ पालकी लेजानेवालोंने तीन पालकियां एक अरण्यके निकट उतार दीं ।

आज्ञा देनेवाला एक सशस्त्र अश्वारोही है। उसके साथ और भी अस्त्र-शस्त्र सुसज्जित दो पुरुष हैं। वे पालकियोंको घेरकर खड़े हो गये ।

प्रथम पालकीमें विश्व-लावण्यमयी, सौन्दर्य-माधुर्यसे पूर्ण, कुसुम-कोमल, नाना अलङ्कार विभूषिता एक किशोरी है। दूसरी पालकीमें—एक अधेड़ सुन्दरी, मातृमूर्त्तिरूपिणी, उज्वल वेश, उज्वल रत्न अलङ्कारसे सुशोभित एक रमणी है और तीसरी पालकीमें बहुमूल्य-वेशधारी सौम्य शान्तिमूर्त्ति पुरुष है।

आज्ञा देनेवाले अश्वारोहीने किशोरीकी पालकीके निकट आकर अभिमान-पूर्वक कहा, "सुन्दरी ! पालकीसे बाहर आओ !"

सुन्दरी चुपचाप पालकीसे बाहर आई। अब उस पुरुषने शिविकारोही प्रौढ़ पुरुषको लक्ष्यकर कहा, "तुमसे अथवा तुम्हारी स्त्रीसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है—तो भी तुम्हारी

पत्नीके आभूषणोंकी आवश्यकता है। यदि अपमानित होना नहीं चाहते, तो बिना द्विविधाके ये आभूषण देदो।"

"रुद्रपतिकी पत्नीने आभूषण उतार कर उस पुरुषको दे दिये,—बहुमूल्य आभूषणोंको कपड़ेमें लपेटकर और छिपाकर अश्वारोही पुरुषने कहा—

"तुम स्वाधीन हो, जा सकते हो।"

व्यग्रकण्ठसे रुद्रपतिने कहा, "मेरी कन्या ?"

"तुम्हारी कन्या भी स्वाधीन है। फिर भी मैं उसको त्याग करनेके लिए प्रस्तुत नहीं हूं।"

"दूसरे उत्तर अथवा प्रश्नकी अपेक्षा न कर अश्वारोहीने पुनः किशारीको लक्ष्य कर कहा, "सुन्दरी, मेरे पीछे आओ।"

"कहां ?"

"मेरे निवासस्थानको।"

"किस लिये ?"

"किसलिये, क्या यह नहीं जानती ? मैं डाकुओंका सरदार जालिमसिंह हूं, धन ऐश्वर्यसे मेरा कोष परिपूर्ण है। किन्तु आज जो रत्न प्राप्त किया है,—ऐसा रत्न कभी नहीं पाया,—मालूम होता है कभी पाऊँगा भी नहीं।"

"वह रत्न क्या है ?"

वह रत्न तुम ही हो।"

"रत्न ? रत्न—शाखाकी सृष्टि, मृगके कण्ठकी शोभाके लिये नहीं होती दस्यु ! सुनो सरदार—मेरे ये बहुमूल्य

मणिमय आभूषण चाहते हो तो देती हूं,—अतुल धन देती हूं —बदलेमें मुझको मुक्ति प्रदान करो।"

"यह क्या कहती हो सुन्दरी! मेरा जो ऐश्वर्य है, उसके एक अंशके मूल्यके लिए तुम्हारे पिताकी समस्त सम्पत्ति भी अति तुच्छ है—मैं एक विशाल राज्य खरीद सकता हूं! मैं तुम्हारे ऐश्वर्यको नहीं चाहता, चाहता हूं तुम्हारे रूपको। आओ सुन्दरी, मेरे पीछे आओ। जंगलमें पालकी नहीं जा सकती, इसीलिए तुमको पैदल चलनेका कष्ट देनेको बाध्य हुआ हूं, फिर भी यदि इच्छा हो—मेरे घोड़े पर बैठ सकती हो।"

हाथ जोड़ कर, घुटने टेक कर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे किशोरीने कातर कण्ठसे कहा, "सरदार, मैं दीना—हीना, अबला रमणी हूं, मुझे मुक्ति-भिक्षा दो—विधाताका शुभ आशीर्वाद अनेक धाराओंसे तुम्हारे मस्तकमें बरसेगा,—दो सरदार, मुझको मुक्ति भिक्षा दो।"

"इस भिक्षाके अतिरक्त और जो चाहोगी सो दूंगा,—अपने ऐश्वर्यको तुम्हारे चरणोंमें लुटा दूंगा, पर तुमको त्याग नहीं दूंगा।"

रमणी खड़ी हो गई। इस समय नेत्रोंमें अश्रु नहीं—आगकी चिनगारियां हैं; मुंहमें विषाद नहीं,—बिजलीके समान तेज है; कण्ठस्वरमें कातरता नहीं—गम्भीरता है। झिड़ककर रमणीने कहा, "मुक्ति नहीं दोगे?"

"नहीं।"

"नहीं दोगे ?"

"नहीं।"

"यही अन्तिम बार पूछती हूँ—मुक्ति दोगे या नहीं ?"

"मैं भी फिर कहता हूं—नहीं दूँगा।"

"और मैं भी कहती हूं—मुझे पाना तो अलग रहा, मेरा अङ्गस्पर्श करनेमें भी तुम समर्थ नहीं हो सकोगे।"

वाक्यके साथसाथ रमणीने वस्त्रोंके भीतरसे एक तीक्ष्ण कटार निकाल कर कहा—

"सरदार, देखो—किस भावसे, किस प्रकार तुम्हारी आशा व्यर्थ और अपनी धर्म-रक्षा करती हूं।"

"आत्म-हत्या करोगी ?"

"इसके अतिरिक्त और उपाय ही क्या है ?"

"उपाय है।"

"क्या ?"

"यदि—"

"इधर उधर क्या कर रहे हो, शीघ्र कहो सरदार, क्या उपाय है ?"

"यदि—अपने पितासे कहकर मुगलोंके प्रधान कर्मचारी और जमींदार समुदायके साथ मेरा परिचय करा दो।"

"इससे तुम्हारा लाभ ?"

"किसके पास कितना धन है—यह जाननेकी मुझको,

विशेष सुविधा होगी, और मेरे डाकुओंका सरदार होनेकी किसीको धारणा भी नहीं होगी।"

"उत्तम, इस विषयमें पितासे अनुरोध करूँगी।"

"करूँगी नहीं—इसी समय करना होगा।"

"अच्छा—अभी करती हूँ।"

कटार यथास्थान रख कर किशोरी अपने पिताकी पालकी की ओर अग्रसर हुई।

अवसर देख सरदारने चुपचाप घोड़ेसे उतर, उस रमणीके पीछे आकर उसके दोनों हाथ दृढ़तापूर्वक पकड़ते हुए कहा—

"अब? इस समय सुन्दरी, तुम्हारी रक्षा मेरे बिना और कौन कर सकता है?"

"धर्म।"

"हा हा हा धर्म! धर्म नहीं है।"

"धर्म है।"

"यदि है—मेरे हाथसे तुम्हारी रक्षा करे, देखना चाहता हूँ, उसकी कितनी शक्ति है।"

सरदारने जोरसे रमणीको खींचा।

देहकी समस्त शक्तिका प्रयोग कर रमणीने अपने उद्धार की चेष्टा की, किन्तु सब व्यर्थ हुआ।

तब रमणीने करुण स्वरसे भयावह चित्कार की—"अरे कोई कहीं है, शीघ्र आओ, बिजलीकी गतिसे चले आओ—

डाकूके हाथ नारीका सर्वस्व जा रहा है ! हे देव, रक्षा करो ! रक्षा करो—माता सती—सीमन्तिनी—अपनी कन्याकी मर्यादा की रक्षा कर अपनी महिमा प्रचार करो ।"

इतनेमें दूरसे वज्रके समान ध्वनि हुई—"भय मत करो—भय मत करो ।"

सबने आश्चर्यपूर्वक देखा—थोड़ी ही दूर पर तीरके समान घोड़ा दौड़ाता हुआ एक सैनिक पुरुष आ रहा है ।

इसी समय सरदारने उस रमणीकी कटार बलपूर्वक छीन ली और रमणीके हाथ छोड़ कर घोड़े पर सवार हो गया । अपने दोनों अनुचरोंके साथ नङ्गी तलवार हाथमें लेकर उस सैनिकका आक्रमण रोकनेके लिये प्रस्तुत हो गया ।

देखते देखते सैनिकने सरदारके सम्मुख आकर गम्भीरता-पूर्वक कहा, "रमणी-पीड़क—नरघातक दस्यु ! यदि जीवनकी कुछ भी ममता है, तो शस्त्र त्याग कर इसी क्षण इस स्थानसे चले जाओ ।"

अभिमानपूर्वक गम्भीर स्वरसे सरदारने कहा, "क्यों रे निर्बोध ! तू क्या स्वेच्छासे अपनी बलि देने आया है । जा—लौट जा—यदि माता-पिता जीवित होंगे—तो जीवन भर उनकी आँखोंके आँसू नहीं सूखेंगे ।"

"मरणेच्छुक शैतान, जा—मृत्युके पथमें ही जा ।"

सैनिकने सरदारके ऊपर आक्रमण किया । सरदार और उसके साथियोंने भी एक साथ सैनिकके ऊपर आक्रमण किया ।

सैनिकके प्रथम आघातसे ही सरदारने समझ लिया, कि आक्रमणकारी कोई सामान्य योद्धा नहीं है। सरदार भी आक्रमणके लिये प्रस्तुत हो गया।

अब सैनिक बड़े विस्मयमें पड़ गया—वह एक ओर अकेला, दूसरी ओर तीन आक्रमणकारी शत्रु। और तीनों आक्रमणकारी नितान्त अशिक्षित भी नहीं। सैनिकने सोचा, यह विजय प्राप्त करना भगवानके अनुग्रहके अतिरिक्त सम्भव नहीं है।

उस समय सैनिकने कातर अन्तःकरणसे भगवानका स्मरण किया। वास्तवमें उसके हृदयमें साहस तथा भुजाओंमें असुर-शक्ति आ गई, पूर्ण उद्यम और विक्रमके साथ उसने सरदारके ऊपर आक्रमण किया। आक्रमण व्यर्थ नहीं हुआ, आहत हो कर सरदार घोड़ेसे नीचे गिर पड़ा। इस ओर ध्यान न देकर सैनिकने उसके एक साथीके तलवारवाले हाथको लक्ष्य कर प्रचण्ड शक्तिसे आघात किया,—इस आघातसे डाकूके हाथसे तलवार जमीन पर गिर पड़ी।

सैनिकने शीघ्र बायें हाथसे डाकूका हाथ खींच कर उसको घोड़ेकी पीठसे दूर फेंक दिया। भूमिमें गिरते समय एक पत्थरसे डाकूके मस्तकमें गहरी चोट आयी। सरदार और साथी की दुर्दशा देख कर तीसरा साथी अपने प्राण बचानेके भयसे बड़ी तेजीके साथ घोड़ा दौड़ा कर भाग गया।

विजयी सैनिकने धीरे धीरे रमणीके सम्मुख आकर मधुर

स्वरसे कहा, "सुन्दरी, तुम कौन हो—यह परिचय जाननेकी मुझको आवश्यकता नहीं है। इस महापापीके हाथसे तुम्हारी रक्षा हो गई है,—यह देखकर मैं परम सन्तुष्ट हूँ। मालूम होता है, यह पालकी आपकी ही हैं।

"हां।"

"अब आप निरापद हो गयीं—अब अपने निर्दिष्ट स्थानको जा सकती हैं। डाकुओंके आक्रमणके भयसे—यदि आवश्यकता प्रतीत हो, तो रक्षकके रूपमें मैं आपके साथ जानेको तैयार हूं।"

"उस दूसरी पालकीमें मेरे पिता हैं;—वे आपके इस प्रश्नका उत्तर देंगे।"

"आपके पिता भी साथ हैं।" उत्कण्ठाके साथ सैनिकने दूसरी पालकीके निकट जाकर देखा—पालकियोंके मध्यमें एक सौन्दर्यमयी नारी है और उसके पीछेकी पालकीमें एक पुरुष बन्दीकी अवस्थामें है। बिना कुछ कहे, शीघ्रता पूर्वक सैनिकने घोड़ेसे उतर कर, तलवारकी सहायतासे वृद्धके बन्धन काट दिये।

बन्धनमुक्त, विपदोन्मुक्त उस अधेड़ पुरुषने कृतज्ञ-हृदय और गद्-गद् कण्ठसे कहा, "तुम कौन हो बेटा, मुझको इस भीषण-विपद्-सागरसे करुणाकी बाहु फैला कर रक्षा करनेवाले तुम कौन हो ?"

"मैं और क्या परिचय दूँ ?—मैं एक सामान्य व्यक्ति हूँ,

राजा हरिनारायणका एक सामान्य सरदार सैनिक मात्र हूं। नाम अमरप्रसाद है।

"तुम सामान्य नहीं—अति उच्च, अति महान हो। ऐसी भाषा नहीं है, जिस भाषामें तुम्हारे इस महा परोपकारकी कृतज्ञता प्रकाश कर सकूं—ऐसी सम्पत्ति भी मेरे पास नहीं है, जिसे तुम्हारे इस उपकारके बदलमें दूं, जिससे तुम्हारे इस उपकारका ऋण परिशोध हो—फिर भी जो कुछ मेरे पास है, वह दूँगा,—रङ्गमहलके सर्व श्रेष्ठ धनी, रुद्रपतिके घरमें आइये—यथासाध्य अञ्जलि दूँगा।"

"आप ही विख्यात धनकुबेर रुद्रपति हैं?"

"हां युवक।"

"मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिये। आपकी आज्ञा उल्लंघन करने योग्य नहीं। आपकी अट्टालिकामें अवश्य आऊँगा। किन्तु उपकारका बदला लेनेके लिये नहीं, पुरस्कारके लोभसे नहीं—केवल स्नेह-प्रीति प्राप्त करनेकी आशासे आऊँगा। राजपूत कभी उपकारका बदला नहीं चाहता—प्रत्युपकार की आशा भी नहीं करता।"

युवकके वाक्योंसे सब मोहित हो गये। सबने सोचा, इतनी उदारता, इतना स्वार्थत्याग,—ये क्या मनुष्य हैं, नहीं नररूपी नारायण हैं!

रमणीने स्नेह भरे शब्दोंमें कहा—"पिता मनसा, वाचा, कर्मणा आशीर्वाद दो,—तुम राजा होओ, वीर-कीर्त्ति उपार्जन

कर राजस्थानके आदर्श पुरुष होओ। तुम सदा आरोग्य रहो, ईश्वरकी करुणा-धारा तुम्हारे समस्त आपद, विपद, शोक, सन्तापको दूर कर दे,—अनिष्टकी इच्छासे कभी कोई निकट आनेका साहस न कर सके।"

"माता, तुम्हारा शुभाशीर्वाद शिरोधार्य कर मैं प्रणाम करता हूँ।"

इसके पश्चात् अमरप्रसादने रुद्रपतिसे पूछा—"इस समय आप कहाँ जायँगे ?"

"जानेकी इच्छा थी मुङ्गेर, किन्तु जब ऐसी बाधा उपस्थित हुई और मेरे साथी भी डाकुओंके भयसे भाग गये तब अब मुंगेर नहीं जाऊँगा,—भागलपुर जाऊँगा। आशा करता हूँ, कमसेकम राजमहलकी सीमा पर्यन्त आप हमारे साथी होंगे।"

"बड़े आनन्दके साथ।"

"पुत्री शोभना, अपने रक्षाकर्त्ता—इस महात्माकी चरणरज अपने मस्तक पर रखो।"

कन्या शोभना पितृ-आज्ञा पालनकर पालकीमें जाकर बैठ गई।

अमरप्रसादने पालकियाँ उठाने की आज्ञा दी और आप घोड़े पर सवार होकर, धीरे धीरे चलने लगे। तीनों पालकियाँ उनके पीछे पीछे जाने लगीं।

सातवाँ परिच्छेद ।

—⊛⊛⊛—

आज सरदार दिलीपसिंहका विचार होनेवाला है। राजा हरिनारायण विचार कार्यमें नियुक्त हैं। राजाका हुक्म हुआ—कोड़ोंकी मार और दो मासका कठिन कारावास।

भीषणतासे एक व्यक्ति कोड़े मारने लगा। कोड़ोंकी मारसे वृद्धका अङ्ग छिलकर रुधिर-धारा बहने लगी।

सहसा भीड़को ठेलते हुए एक सुडौल सुन्दर युवकने आकर कोड़े मारनेवालेकी पीठमें एक लात मारी। कोड़े मारनेवाला राजाके निकट जा गिरा। क्रोधसे जलकर राजाने आज्ञा दी—"बांध लो।"

दो पहरेदारोंने आकर युवकके दोनों हाथ पकड़ लिये। मस्तक उन्नत कर और उच्च कण्ठसे युवकने कहा—"राजा! बगलमें तलवारके रहते कोई भी मेरा अङ्ग स्पर्श नहीं कर सकता,—आप प्रभु हैं, धर्मकी मूर्ति हैं, इसीलिए आज शस्त्र होते हुए भी और देहमें शोणित रहते ही, जीवनमें प्रथमबार बन्दी हो रहा हूं।"

कर्कश स्वरसे राजाने कहा, "इसीलिए इस भावसे स्वामि-भक्ति दिखलाता है? भक्तिका आडम्बर दिखलानेकी और आवश्यकता नहीं है, अमर।"

"राजा—राजा—सत्य कहता हूं—आपको धर्मका प्रतिनिधि समझता हूं। किन्तु—

"पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिताहि परन्तपः,

पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व देवता।"

वही—मेरा स्वर्ग है, मेरा प्रत्यक्ष देवता निष्ठुर प्रहारसे जर्जरित—रुधिरसे सन रहा है, वेदनासे नेत्र भर रहे हैं, यह पैशाचिक दृश्य—वृद्ध पिताके प्रति यह कठोर अत्याचार, कौन पुत्र स्थिरभावसे सहनकर सकता है? नहीं जानता,—मेरे पिताने कौनसा अपराध किया है। वह अपराध कैसाही क्यों न हो, तथापि वे मेरे पिता हैं—मेरे धर्म, मेरे जन्मदाता हैं। उनका तिरस्कार पुत्र होकर, मैं कैसे देख सकता? उनको कलङ्कसे मुक्त करनेके लिए यदि, मुझको त्रिभुवनके विरुद्ध भी खड़ा होना पड़े, तो अविचल हृदयसे खड़ा होऊँगा; मुझको पुरीष-पूरित अथवा अग्नि-परितप्त नरकमें भलेही जाना पड़े, मेरे नेत्र—मेरा हृत्पिण्ड भले ही निकाल लिये जांय,—तो भी पिताकी लाञ्छना जीते जी नहीं देख सकूंगा।"

"सुन्दरलाल! इसके हाथ पैर बांधकर कोड़े लगाओ, जिससे छटपटा कर बाधा न दे सके।"

"जो आज्ञा" कह कर कोड़े मारनेवाले सुन्दरलालने अमरप्रसादको बांधा।

कम्पित स्वरसे अमरप्रसादने कहा,—"राजा—स्वामी!

मुझको मारो ;—मुझको काटो, काल कोठरीमें रखो, किन्तु मेरे वृद्ध पिताको मुक्त कर दो।"

"प्रार्थना निष्फल—सुन्दरलाल, कोड़े लगाओ।"

सुन्दरलाल अमरप्रसादको पीठपर कोड़े मारने लगा। धीर एवं वीर युवकने चुपचाप सब सहन किया, रुधिरसे अङ्ग भर गया।

दर्शकगण आंखें मीचकर चले गये। रह गये केवल पापके मानसपुत्र हरिनारायण और उनके दो पिशाच प्रकृतिके साथी। उनका हृदय नीरस, पाषाण था, इसीलिए अमरप्रसादकी यन्त्रणासे उनका हृदय नहीं पसीजा,—कांप न उठा। किञ्चित विचलित भी नहीं हुआ।

ज्वाला जर्जरित हृदयसे अमरप्रसाद एकबार जोरसे चिल्ला उठा। उस चित्कारसे सब खिलखिलाकर हँसने लगे। दी हुई आज्ञामें इतनेपर भी परिवर्तन नहीं हुआ, कोड़ोंकी मार बराबर पड़ती ही रही।

हठात् एक अनुपम सुन्दरी किशोरीने आकर कोड़े मारने-वालेका हाथ पकड़कर कोड़ा छीन लिया। सब आश्चर्य भरे नेत्रोंसे अवाक होकर रमणीके प्रति देखते रह गये।

हरिनारायणने कहा,—"तू यहां क्यों आई है पुत्री?"

"पिता—यह कैसा पैशाचिक काण्ड है!"

"पैशाचिक काण्ड नहीं पुत्री—यह विचार है।"

"यह विचार नहीं पिता, भीषण अत्याचार है,—और ये सब

पिशाच शैतानके आनन्दको बढ़ानेवाले हैं। पिता—मैं खिड़कीसे सब देख रही थी, सुन रही थी। पिताकी रक्षा करना पितृभक्त सन्तानका अवश्य कर्त्तव्य है। जो ऐसा नहीं करता, वह पुत्र नहीं, मनुष्य नहीं, मनुष्यकी दृष्टिमें वह अपराधी है। पुत्र पिताका आज्ञावद्ध सेवक मात्र है। तब किस विधानसे, किस विचारसे पुत्रको आपने दण्ड दिया है?"

ऊर्मिलाके चेहरेसे एक अपूर्व आभा, एक स्वर्गीय प्रभा निकलने लगी। जिसने उसके चेहरेको देखा, वही शङ्कित होने लगा।

कन्या-स्नेह-परायण राजा हरिनारायणने कहा,—"ठीक कहती हो पुत्री! अच्छा तुम्हारे कहनेसे अमरप्रसादको मुक्त करता हूं,—फिर भी उसको कर्मच्युत करता हूं।"

राजाकी आज्ञासे अमरप्रसाद छोड़ गये। अमरप्रसादने एकवार दिव्य स्वरूपवती, पवित्रतासे आच्छादित बालिकाके मुंहकी ओर कृतज्ञतापूर्ण नेत्रोंसे देखा।

ऐसा सौन्दर्य, स्वच्छता, सुषमा, बालिकाके चेहरेमें मैंने पहिले कभी नहीं देखी। शैशवकालसे ही ऊर्मिलाको देखता आ रहा हूं, किन्तु इतनी सुषमा, ऐसा माधुर्य कभी नहीं देखा। आज मानों स्वर्णवर्णसे रंगी हुई यह माधुरी चन्द्रकिरणोंसे स्नान-कर खड़ी है। अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे अमरप्रसादने कहा,—

"राजनन्दिनी, आपके इस अयाचित अपार करुणाके लिए सहस्र धन्यवाद—किन्तु मैं मुक्ति-भिक्षा नहीं चाहता।

करुणामयी, यदि करुणा है, मेरे पिताको मुक्ति दो—अन्यथा साम्राज्यके विनिमयमें भी मैं मुक्ति नहीं चाहता।"

अमरप्रसादकी पितृ-भक्ति देखकर राजनन्दिनी मुग्ध हो गई। मुग्ध-नयनोंसे अमरप्रसादके मुंहकी ओर देखने लगी। उसने भी बाल्यकालसे ही अमरप्रसादको देखा है।

अमरप्रसादका देव-पुत्रके समान गौरव एवं वीरत्वमण्डित सरल, सुन्दर मुंह और आकृति देखकर उसने एकबार सोचा, यह क्या सामान्य दीन-हीनकी सन्तान है? विश्वास नहीं होता। मालूम होता है, यह छद्मवेशी अथवा शापभ्रष्ट देवता है। सहसा बालिकाके शून्य हृदयमें एक मूर्ति अङ्कित हो गई। यह प्रेमकी है अथवा प्रीतिकी—नहीं जानते। रमणी-हृदय दुर्भेद्य, दुर्ज्ञेय है। आज अमरप्रसादकी प्रकृति देखकर वह चकित हो गई।

मधुरकण्ठसे राजनन्दिनीने कहा "पिता!"

"यह नहीं हो सकता ऊर्मिला, तेरी कातर प्रार्थनासे अमर-प्रसादको मुक्त कर दिया है, किन्तु बुड्ढे बदजात दिलीपकी मुक्ति असम्भव—असम्भव है।"

"तो मेरी मुक्तिकी आवश्यकता नहीं है, राजा।"

"तुम्हारी अभिरुचि।" इसके पश्चात् उच्चकण्ठसे राजाने कहा,—"किशन!"

दारोगा आकर सम्मुख खड़ा हुआ।

"सुनो—इस बूढ़े बे-ईमानको बन्दी कर रखो। इस युवक

शैवालको भी बांध कर रखो—फिर भी यदि यह मुक्तिभिक्षा चाहे—मुक्त कर देना। एकही कारागारमें दोनोंको रखो।"

सम्मान सहित अभिवादन कर किशनने दोनों अभियुक्तोंके साथ प्रस्थान किया।

राजाने फिर बूधनको पुकारा।

बूधनने आकर अभिवादन किया। राजाने पूछा, "सब तैयार है?"

"हां स्वामी।"

"माझी—मल्लाह—बजरा, सब ठीक है?"

"हां स्वामी।"

"उत्तम। जाओ पुत्री ऊर्मिला! अन्तःपुरमें जाकर शीघ्र प्रस्तुत हो जाओ,—मैं आज ही जलमार्गसे यात्रा करूंगा।"

"कहाँ जाओगे पिता?"

"मुंगेर।"

आठवाँ परिच्छेद।

"पुत्र!"

"पिता!"

"घर जाओ।"

"आपको इस सङ्कटापन्न अवस्थामें—"

"यह ठीक है, तो भी घर जाओ, वहां तुम्हारी जननी मृत्यु-शय्यामें है; तुमको देखनेके लिये कातरनेत्रोंसे किवाड़ोंकी ओर देखती रहती है। अबतक—ओः नहीं नहीं, तुम घर जाओ, तुमको देखनेसे ही उसकी व्याधि बहुत कुछ दूर हो सकती है,—यदि मातृहत्या पापसे लिप्त होना नहीं चाहते,—तो बिना कुछ कहे घर जाओ—"

"ओः! यहां तक, यहां तक! अच्छा जाता हूं, पिता। किन्तु आज ही यदि ये आपको मुक्त नहीं कर दें, यदि आपको बिना देखे मेरी स्नेहमयी जननी जीवन विसर्जन करे, तो इस अविचारका—इस अत्याचारका ऐसा बदला लूंगा, जिससे कोई कभी किसीके प्रति अनुपयुक्त अत्याचारके लिये हाथ नहीं उठा सकेगा।"

अमरप्रसादके दोनों नेत्र जल उठे। आकाशमें मेघ गर्जन करने लगा! अमरप्रसादने क्रोधसे भरकर कहा—"दारोगा।"

"बन्दी!"

"मैं मुक्तिकी प्रार्थना करता हूं, मुझको मुक्त कर दो।"

स्वामीके आज्ञापालक दारोगाने किवाड़ खोल दिये। पितृभक्त अमरप्रसाद पिताकी चरण-रज मस्तकमें लगाकर भक्ति भरे अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे कारागृहसे बाहर आये। वृद्धकी छाती आंसुओंसे भीग गई।

दुःखभारावनत हृदयसे अमरप्रसादने कम्पित पैर एवं स्पन्दित हृदयसे घरमें प्रवेश किया। पैर उनके जमीनमें धँस

गये—छाती धड़कने लगी, माताके कमरेमें आकर देखा, शून्य कमरेमें सूनी शय्या है। अमरप्रसाद उस कमरेसे अन्य कमरोंमें जाने लगे। कहीं भी जननीको न पाकर, भग्नकण्ठसे "माता, माता," कहकर चिल्लाने लगे। नहीं, शब्द नहीं, सब चुपचाप, सुनसान। मस्तकमें मानो हिमालयका भार पड़ गया। प्रलयकी कल्लोल मानो उनके कानोंमें शब्द करने लगी। ज्वाला-मुखीका तप्त प्रवाह उनके हृदयमें बहने लगा। पुनः "माता, माता" कहकर चारों दिशाओंको कम्पितकर अमरप्रसाद चिल्लाने लगे। इसी समय उत्तर मिला,—

"तुम्हारी मां श्मशानमें है।"

कहांसे किस ओरसे किसने उत्तर दिया—अमरप्रसादने नहीं जाना, किसीको देखा भी नहीं—उन्मत्तके समान श्मशान-की ओर दौड़ने लगे। आकाश मेघाच्छन्न हो रहा है। श्मशान नदीके तीर, आबादीके बाहर, बहुत दूर है।

कङ्कड़-पत्थरोंकी चोटसे अमरप्रसादके दोनों पैर क्षतविक्षत हो गये, किन्तु इस ओर उनका ध्यान नहीं। "मां,"मां" चिल्लाते हुए दौड़े जा रहे हैं। उनके इस उन्मत्त भाव, भीषण करुण चित्कारके भयसे पशुपक्षी दूर भाग गये,—भयसे बालक बालिकाएं, रो रोकर अपनी अपनी माताओंके अंचलोंमें छिप गये, सब यही सोचने लगे—अमरप्रसाद पागल हो गये हैं। कोई कुछ ही क्यों न सोचे,—अमरप्रसादको किसी ओर दृष्टि नहीं है। वे तीरगतिसे दौड़े जा रहे हैं, मुंहमें केवल "मां,"

मां"की ध्वनि है। पत्थरसे टुकरा कर वे एक जगह गिर पड़े ; अङ्ग भीषण चोटसे छिल गया, उसी समय उठकर फिर दौड़ने लगे, मुंहमें केवल "मां, मां"की ध्वनि है।

श्मशानके निकट आकर अमरप्रसादने देखा, एक चिता धांय धांय कर जल रही है। वे व्यथित हृदयसे पुकारने लगे—"माता, माता !" श्मशानमें उपस्थित लोगोंने पीछे फिरकर देखा, बिजलीके समान एक मनुष्य दौड़ा आ रहा है। किञ्चित निकट आकर सबने पहिचान लिया—वे अमरप्रसाद हैं।

अमरप्रसादने श्मशानमें आकर यादवलालको देखकर उच्च-कण्ठसे कहा—"दादा, मेरी मां कहां है ?"

"इस चितामें।"

"चितामें ? बिदा न लेकर, आशीर्वाद न देकर चितामें ! नहीं, मेरी मां अभी जीवित है। पुत्रको चरण-रज न देकर मेरी मां नहीं जा सकती है। चरण-रज दो मां।"

अमरप्रसाद चितामें कूदनेको उद्यत हुए।

चतुर यादवलाल भी पहिलेसे ही यह समझे हुए थे, दृढ़ता-पूर्वक उन्होंने अमरप्रसादके हाथ पकड़ लिये। बाधा उपस्थित होनेपर अमरप्रसाद मूर्च्छित होकर भूमिमें गिर पड़े, बहुत तरहके यत्न और सुश्रूषासे अमरप्रसाद शीघ्र ही चैतन्य हुए। वे चिताकी ओर देखने लगे ;—उनको सब बातोंका स्मरण हो आया। बालकके समान वे उस समय कांपने लगे।

चिता बुझी। गङ्गा-जलसे सन्तुष्ट हो कर अग्निदेव बिदा हुए।

अमरप्रसाद चिताके निकट शिशुके समान कांपने लगे। इसके पश्चात् उठकर उन्होंने अङ्गमें भस्म रमा, जननीके श्रीचरणोंको प्रणाम किया। जब उठे, उस समय उनके नेत्रोंमें आँसू नहीं थे, चेहरे पर विषादके चिह्न नहीं थे, कातरताका लेश भी नहीं था। चेहरा भीषण, नयन कुटिल, दोनों हाथ मुष्टिबद्ध थे। यह मूर्ति, यह भाव देखकर यादवलालने भयभीत होकर पुकारा, "अमरप्रसाद !"

उत्तर कुछ नहीं।

पुन: यादवलालने पुकारा, "अमरप्रसाद !"

इस समय कर्कश कण्ठसे उत्तर मिला "दादा।"

"चलो घर चलो।"

"घर ! घर कहां है ?"

"जिस स्थानमें वास करते हो।"

"वह घर नहीं, ठहरनेका स्थान है। घर मेरी माँ गई है।"

"तो उसी ठहरनेके स्थानको चलो।"

"ना।"

"क्यों ?"

"बदला लूंगा।"

"किससे ?"

"राजा हरिनारायणसे।"

भीषण शब्दसे मेघ गरजने लगा,—सन् सन् शब्दके साथ

प्रबल वायु बहने लगी, कलकल शब्दसे भीषण तरङ्गके साथ नदीका जल आन्दोलित होने लगा।

इसी भावसे अमरप्रसादका भी हृदय आन्दोलित हो रहा था। यादवलालने पूछा—"उसका अपराध ?"

"अपराध! उसका अपराध गुरुतर है। मुझको और पिताको बिना देखे जल जल कर मेरी मां शान्तिके राज्यको चली गई है,—उसके निष्ठुर विचारसे मैं यदि बन्दी न होता,—तो—मैं मातासे देख सकता, कदाचित् इतनी जल्दी पृथ्वी त्याग कर मेरी मां अनन्त पथको चली नहीं जातीं। उसीके राक्षसी व्यवहारसे आज माताको खोया है।"

"भूल! यह अनुमान मात्र है। भाग्यके विपरीत, विधाताके लेखको मिटाकर कोई किसी कार्यको नहीं कर सकता।"

"न कर सके, तो भी अन्त समयमें माताके दर्शन तो मिलते। उनकी चरण-रज,—उनके आशीर्वादसे तो वंचित न होता।"

क्रोधसे होठोंको चबाते हुए अमरप्रसादने पुनः कहा,—"मैं पुत्र हूं, मेरे ही सम्मुख उसने पिताको कोड़ोंसे पिटवाया, पिताके अङ्गसे रुधिरकी धारा बहने लगी,—मैं चुपचाप उसको देखता रहा। इसीका बदला लूंगा! हरिनारायणके हृदयमें ऐसी आग जलाऊंगा, जिसकी ज्वालासे, वह छटपटायेगा—आर्त-नादसे जल, स्थल और आकाशको कम्पित करेगा। प्रतिशोध ही इस समय मेरा मूलमन्त्र है। समझ लीजिए दादा, आपका

कोई वाक्य,—कोई उपदेश मेरी प्रतिज्ञाको व्यर्थ करनेमें समर्थ नहीं होगा।"

"अमरप्रसाद! सुनो, इस संसारमें क्षमाके समान प्रतिशोध और नहीं है।"

प्रबल तूफानसे नदी चंचल हो गई। मल्लाह चिल्कार कर नावोंको किनारे लगाने लगे। दूरमें क्षुद्र चार नाव और एक वृहत् बजरा तरङ्गोंमें बह रहे हैं—नाच रहे हैं। प्राणपणसे यत्न करके माझीलोग नावोंको किनारे लगानेकी चेष्टा कर रहे हैं। उनके बड़े कौशलसे चारों नावें किनारे लग गईं। नावके लोग भूमिमें आ गये, किन्तु बड़ा बजरा किसी प्रकार किनारे नहीं लगा। उसका बड़ा शरीर, वृहत् तरङ्गोंके आघातसे कम्पित और आन्दोलित होने लगा। उसी बजरेके ऊपर दृष्टि स्थिर कर अमरप्रसादने अस्फुट स्वरसे कहा,—"वही है क्या?"

यादवलालने इसके उत्तरमें कहा, "हां वही है। क्षमाके समान और प्रतिशोध नहीं।"

बड़ी कठिनतासे बजरा किनारेकी ओर चला। माझी और मल्लाहोंका साहस बढ़ा, वे द्विगुण उत्साहके साथ बजरेको किनारे लानेकी चेष्टा करने लगे।

सहसा एक प्रबल धक्केसे उछल कर बजरा उलटनेसे बच गया। उस प्रचण्ड वेगका निवारण न होनेके कारण एक रमणी बजरेसे उस भीषण तरङ्गमयी नदीके गर्भमें गिर कर डूब गई।

इस समय बड़ा हाहाकार मचा। चित्कार करते हुए एक प्रौढ़ मनुष्यने बजरेसे कहा,—"जो कोई मेरी जलमग्न कन्याका उद्धार करेगा—उसको लक्ष्य मुद्रा दूंगा,—जमींदारी दूंगा।"

किन्तु साक्षात् मृत्युरूपी नदीमें कूदनेके लिये कोई अग्रसर नहीं हुआ।

अधेड़ मनुष्य अनेक अनुनय विनय करने लगा। किन्तु सब व्यर्थ हुआ। सब चुप—शान्त हैं।

इस कोलाहलसे अमरप्रसादकी शान्ति भङ्ग हुई! घटनाका हाल जान कर वे उसी समय नदीमें कूद पड़े।

तैरनेमें प्रवीण अमरप्रसाद घटनास्थल पर जा कर चारों ओर निरीक्षण करने लगे,—बहुत दूर कृष्णवर्णका एक पदार्थ बहता हुआ दिखाई दिया। तरङ्गोंमें तीव्रगतिसे अमरप्रसादने लक्षित स्थानपर जाकर भासमान कृष्ण पदार्थको आकर्षित करके देखा—रमणीका केशगुच्छ है। केशगुच्छ खींच कर अत्यन्त कष्टके साथ अमरप्रसाद किनारे आये।

इसी समय बजरा प्रबल तरङ्गोंके जोरसे किनारे आ लगा। अमरप्रसादको रमणीके साथ किनारे आते देखकर किनारेके सब लोग आनन्दोच्छ्वाससे करतलध्वनि करने लगे।

अमरप्रसादने बजरेके लोगोंके निकट आकर गम्भीरस्वरसे कहा, "पितृ-लाञ्छनकारी, अत्याचारी, पिशाच राजा हरिनायण! यही मेरा प्रतिशोध है।"

इतना कह कर उसने चैतन्यहीन रमणीको उसके चरणोंमें रख दिया।

आश्चर्यान्वित होकर हरिनारायणने देखा—उनकी कन्याका उद्धारकर्ता स्वयं अमरप्रसाद है।

हरिनारायणका हृदय भर आया। उन्होंने गद्गद् स्वरसे कहा, "इतने उच्च, इतने महान तुम हो! पहिले तुम्हें पहिचाना नहीं, जाना नहीं। अब जाना है, अब पहिचाना है, भगवानके तुम प्रतिनिधि हो, धर्मकी तुम मूर्त्ति हो! तुम्हारे महत्वके उज्वल प्रकाशकी छटाने मेरे अन्धकारपूर्ण हृदयको आलोकित कर दिया है। धन्य, तुम सहस्रवार धन्य हो, तुम्हारे स्पर्शसे मनुष्य भी धन्य है।"

अन्य सब लोगोंके प्रयत्नसे ऊर्मिला चैतन्य हुई। धीरे धीरे उठ कर वह खड़ी हुई।

अमरप्रसादके कानमें हरिनारायणके किसी वाक्यने भी प्रवेश नहीं किया। उनके कानमें केवल यादवलालके वाक्य की ध्वनि हो रही थी—"क्षमाके समान और प्रतिशोध नहीं है।"

कुछ कालतक चुप रहकर हरिनारायणने कहा, "इसी पवित्र एवं पुण्य मुहूर्तमें—मुक्त आकाशके नीचे खड़े होकर, ईश्वरके नाममें, सबके सम्मुख अपने आधे राज्यके साथ अपनी एकमात्र आदरिणी—नयन रञ्जिनी कन्या ऊर्मिलाको तुमको प्रदान करता हूँ। मेरे पश्चात् तुम ही राजा होगे।"

दोनोंके हाथ मिलाये गये। ऊर्मिलाकी देह कांपने लगी।

अमरप्रसादकी अशान्ति भङ्ग हुई। एकबार उनका हृदय विद्रोही हो उठा। किन्तु हरिनारायणकी अनुतापपूर्ण करुण दृष्टिने उस विद्रोही भावका दमन कर दिया। अमरप्रसादने मस्तक अवनत कर लिया।

सहसा सबकी आनन्द-ध्वनिको मथित कर विकट आर्तनाद होने लगा। सबने भयभीत होकर विस्मयके साथ देखा, राजा हरिनारायण रक्तसे सनी हुई देहसे भूमिमें गिर रहे हैं और उनके निकट तीक्ष्ण कटार हाथमें लिये हुए एक मुक्तकेशा रमणी खड़ी है।

क्षणभरतक हरिनारायणकी ओर देखकर रमणीने खिलखिला कर हंसते हुए कहा,—"हाः—हाः कैसा दृश्य है? करो—करो—रमणीके ऊपर अत्याचार करो। बहुत दिनोंसे—जब—उस दिनकी बात याद आती है, जिस दिन डांकूकी तरह अपने माता-पिताकी स्नेह-गोदसे, समाजकी कोमल छायासे तुम मुझे खींचकर लेजानेके लिये आये—कौस्तुभमणिकी अपेक्षा मूल्यवान मेरा अमूल्य रत्न अपहरण किया,—उसी दिन राजा, तुम्हारी हत्या करनेका संकल्प किया, उसी दिनसे तुम्हारे हृदयके रक्तसे अपने हाथ रङ्गनेका संकल्प कर तुम्हारे पीछे पीछे घूम रही हूँ।"

मृत्युपथगामी हरिनारायणका हृदय कांप उठा! पहिचान

लिया—उनके ही द्वारा जिसका धर्म गया था—यह वही गृहस्थ ललना—सुन्दरा है।

चोट गुरुतर है। हरिनारायणने शीघ्र अनन्त-पथकी यात्रा की।

उनके हृदयकी धड़कन बन्द हुई देखकर, सुन्दराने पुनः हंस कर उच्च कण्ठसे कहा—"हाः—हाः—हाः, मेरा बदला पूर्ण हो गया है, पापका परिशोध हो गया है।"

यह कहते कहते सुन्दरी नदीमें कूद पड़ी। सबने भयके साथ नदीसे यही ध्वनि सुनी,—

हाः—हाः—हाः, मेरा बदला पूर्ण हो गया है, पापका परिशोध हो गया है।

द्वितीय खण्ड।

पहला परिच्छेद।

मणिमय आसनमें, मणिमय भूषण-युक्त, मणिमय राजदण्ड धारण किये हुए, महिमान्वित, महत्व-वीरत्वसे भरपूर, मध्याह्न-भास्करके समान वीर्यवान, जगदीश्वर नामसे विख्यात, प्रशान्त-मूर्त्ति भारतेश्वर अकबर विराजमान हैं।

वह दरबार-गृह अपूर्व है। अपूर्व सजावट, अपूर्व सौन्दर्य से भरपूर है। नेत्रोंको चकित करनेवाला, हृदयको स्तम्भित करनेवाला—यह दरबार-गृह इन्द्रको सभाका अभिमानपूर्वक उपहास कर रहा है। स्तम्भोंमें नक्षत्रोंको लज्जित करनेवाले अमूल्य रत्न जड़े हैं। दीवारोंमें प्रकृतिके सौन्दर्यको अपहरण करनेवाले तैल चित्र हैं, एक स्तम्भसे दूसरे स्तम्भ तक नन्दन-काननके समान सुगन्धयुक्त कुसुम-मालाएँ हैं। सिंहासनके प्रत्येक सोपानमें उज्वल मणि-मुक्ता चमक रहे हैं। ऐसा मालूम होता है, मानो कुवेरके ऐश्वर्य-विनिमयसे यह दरबार-गृह निर्माण हुआ है। सुवर्ण सिंहासनको घेरकर रक्षक खड़े हैं।

सिंहासनकी दक्षिण ओर—आमात्यवर्ग भय-विह्वल चित्तसे विराजमान हैं। बायीं ओर राजा टोडरमल, राजा मानसिंह, हुसन कुलीखां, आलमखां, प्रभृति महारथी, शूरश्रेष्ठ सेनापतिगण शंकाकुल हृदयसे बैठे हैं। सम्मुख अमीर, उमराव, सभासद्‌गण चकित नेत्रोंसे भारतेश्वरके मुखकी ओर देखते हुए यथायोग्य आसनोंपर विराजमान हैं। कम्पित हृदय और कांपते हुए पैरोंसे प्रधान सचिव सम्राटके सम्मुख आकर, अभिवादन कर खड़े हुए।

शान्तिपूर्वक महामति अकबरने पूछा, "क्या समाचार है सचिव?" पुनः अभिवादन कर वृद्ध सचिवने भय तथा सम्मानके साथ कहा—"जहांपनाह, सम्वाद बड़ा भयानक है। पठानपति नवाब दाऊँदखांने कटकसे नई शक्ति संग्रह कर बंग, बिहार, ऊड़ीसाको अपने अधिकारमें कर लिया है। अब वह अपनेको स्वाधीन घोषणा कर रहा है। बङ्गालके राजा और जमींदारोंसे बलपूर्वक कर ग्रहण कर रहा है।"

भारतेश्वरने क्रोध-कम्पित स्वरसे कहा,—"देखता हूं उसका अहङ्कार बहुत बढ़ गया है। उसकी यह स्पर्द्धा चूर्ण कर मिट्टीके साथ मिला देनी होगी। पठानोंका सिंहासन, भारतसे समूल नष्ट कर सागर-गर्भमें फेंक देना होगा। इस धृष्टताका ऐसा बदला लूंगा, जिसको देखकर मुगलोंके विरुद्ध कोई उँगली उठानेका साहस भी नहीं कर सकेगा, मुगलोंका नाम मात्र स्मरण करते ही सब भयसे शंकित होकर मस्तक अवनत

करेंगे। इस बार मुगल-सैन्यसे बंगालको भर दूंगा, उसमें पठान शक्ति डूब जायगी। जाओ सचिव, अपने स्थान-पर जाओ।"

अभिवादन करते हुए विपदोन्मुक्तके समान मंत्री पीछे हट कर, अपने स्थानपर जाकर बैठ गये।

सम्राटने पुकारा,—सेनापति मनाइमखां!"

भयभीत होकर शीघ्रतासे मनाइमखांने सम्राटके सम्मुख जाकर अभिवादन किया और विनम्र सशंकित स्वरमें कहा— "दीन दुनियाके मालिक, इस गुलामके लिये क्या हुक्म है? आज्ञा कीजिये—देहकी समस्त शक्ति-सामर्थ्य लगा कर उसको सम्पन्न करूँगा।"

"तुम वीर, प्रकृत योद्धा हो; इस दुष्ट पठान दाऊदखांके दमनका भार तुम्हारे ऊपर समर्पण करता हूं। तुम प्रधान सेनापतिके रूपसे पुनः बंगालमें जाओ। राजा टोडरमल तुम्हारे सहकारी होंगे। इस समय जैसे और जिस तरह हो, उस अभिमानी पठानकी शक्तिको चूर्ण विचूर्ण किया चाहता हूँ। मैं उसकी रुधिरसे सनी हुई शिरहीन देह अथवा श्रृङ्खलाबद्ध देह चाहता हूँ! बङ्ग-विजयी वीर! आशा करता हूं, तुम यह भेट प्रदान कर मुझको सन्तुष्ट करनेमें पराङ्मुख नहीं होगे। यदि उपहारके योग्य कार्य करोगे तो अतुल पुरस्कार और अतुल सम्मानसे तुमको विभूषित करूँगा। अन्यथा, जो—मानववाञ्छ-नीय श्रेष्ठ पद-गौरव तुम्हारा है, सब चला जायगा। जाओ।"

सेनापति उसी भावसे उसी स्थानमें खड़े रहे।

तीक्ष्ण बुद्धिशाली सम्राट समझ गये, सेनापति मनाइम खांको कुछ कहना है। यह विचारकर सम्राटने पूछा, "मनाइम-खां, क्या तुम्हारी कुछ प्रार्थना है ?"

अभिवादन कर मनाइमखांने कहा, "सम्राट विचक्षण बुद्धिमान हैं। इस दासकी सम्राटके निकट एक विनीत प्रार्थना है, यदि आज्ञा हो,—अभयदान दीजिए—"

"निशंक हो कर कहो सेनापति !"

"जहांपनाह ! आपकी आज्ञा सम्मानके साथ शिरोधार्य है। किन्तु शाहंशाह, राजा टोडरमलके अतिरिक्त मैं अन्य सहकारीके लिये प्रार्थना करता हूँ।"

"इसका कारण ?"

"इसका कारण यही है, कि दाऊदखांकके इस-शक्ति-संग्रहके हेतु राजा टोडरमल ही हैं।"

"कैसे ?"

"नवाब दाऊदखांने मुगल-शक्तिके निकट पराजित हो कर बंगालके एक राजाका आश्रय ग्रहण किया। राजा टोडरमलने उस राजाके नगर पर आक्रमण किया और पठान-पति दाऊद-खांको पकड़ कर भी उसको मुक्त कर दिया। उसी समय मैंने उपस्थित होकर पठानराजको पकड़नेके लिए अपनी सेनाको आज्ञा दी। राजाने अपने अधीनस्थ राजपूत सेना लेकर मेरी आज्ञाके विपरीत कार्य किया। इसीलिए दाऊदखां भागने में

समर्थ हुआ और इसीलिए आज मुगलोंको पुनः बंग-विजय करनेके लिए यह आयोजन करना पड़ा है।"

तीक्ष्ण नेत्रोंसे राजा टोडरमलकी ओर देखकर तीव्र कण्ठसे सम्राटने कहा,—"राजा टोडरमल! क्या यह सत्य है?"

वीर राजा टोडरमलने सम्राटके समीप आकर, अभिवादनके अन्तमें, उन्नत मस्तक, उन्नत वक्ष और निर्भीक कण्ठसे कहा, "सत्य है सम्राट!"

उत्तर सुन कर सब अत्यन्त विस्मत हुए, राजाके प्रति कठोर आज्ञा प्रचारकी प्रतीक्षासे सब सम्राटके मुंहकी ओर देखने लगे। पर दिल्लीश्वरके मुंहपर कुछ भी भाव-विलक्षणता लक्षित नहीं हुई। केवल उनका ललाट कुछ सङ्कुचित हुआ। राजाके प्रति अति तीक्ष्ण दृष्टिसे देखकर महिमामय सम्राटने कहा,—"राजा टोडरमल! मैंने तुमको असीम प्रभुत्व, अतुल शक्ति प्रदान की है, बिना सङ्कोचके तुम्हारे ऊपर अगाध विश्वासका भार रखा है; किन्तु आज यह क्या सुन रहा हूं?"

"सम्राट! राजपूत कभी विश्वासघातक नहीं होता। राजपूतका रक्त कभी भिन्नरूप धारण नहीं करता, राजपूतका ललाट विश्वासघातके कलङ्कसे कभी मलीन नहीं होता। राजपूतको विश्वासघातक कह कर कभी कोई निस्तार नहीं पा सकता, किन्तु मैं राजभक्त प्रजा हूं, हिन्दूओंके लिये राजा जाति, धर्म, अन्तमें देवतास्वरूप है।"

सामयिक सेनाकी ओरसे शस्त्रोंके झन्कार का शब्द हुआ।

सब सोचने लगे—अब राजाका निस्तार नहीं है, किन्तु सम्राटने पूर्ववत् अचंचल कण्ठसे कहा, "फिर दाऊदखांको क्यों छोड़ दिया ?"

"क्यों छोड़ दिया, सम्राट् ! क्या यह कथा सुनेंगे ? अच्छा सुनिये ।—पराजित, भागे हुए नवाबने प्राणोंके भयसे एक राजपूत जमीन्दार की कन्याका आश्रय ग्रहण किया ।"

"बालिकाका आश्रय लिया !"

"हां सम्राट, एक बालिकाका आश्रय लिया । बालिकाके पास सेना नहीं, सहायक नहीं, कुछ नहीं था, तथापि बालिकाने उसको आश्रय दिया, मैंने बहुत सी सेना लेकर बालिकाके गृह पर आक्रमण किया । बालिकाके पिता राजा हरिनाराण हमारी सहायताके लिए उस समय मुंगेर में थे, मैंने नवाबको समर्पण कर देनेके लिए बालिकाको भय दिखाया, किन्तु वृथा—मैंने राजपूत होकर, योद्धा हो कर भी, उस अबला बालिकाके ऊपर आक्रमण करने की आज्ञा दी । तेजस्विनी राजपूत-नन्दिनीने भी केवल मुट्ठी भर पहरेदारोंको मेरे साथ मुकाबला करनेकी आज्ञा दी । वे थोड़ेसे पहरेदार धराशायी हुए, तथापि फाटक किसीने नहीं त्यागा । खुले फाटकसे मैं अट्टालिकामें प्रवेश करने के लिए उद्यत हुआ,—इसी समय एक अपूर्व दृश्य देख स्तम्भित हो कर, मैं खड़ा रह गया ।"

"क्या देखा राजा ?"

"देखी एक रामधनुके वर्णके समान, बिखरे हुए केशोंवाली,

खड्गधारिणी, महिमामयी, तेजोमयी मातृमूर्ति! देखा:— देहमें उसके त्रिभुवनका सौन्दर्य, नेत्रोंमें अनल-प्रवाह, मुंहमें समुद्रके समान गाम्भीर्य! भयसे मैं पीछे हट गया। इसी समय दाऊदखांने अट्टालिकासे बाहर आकर मेरे ऊपर आक्रमण किया। क्षणिक युद्धके पश्चात् नवाबकी तलवार मेरे आघात से दूर जा गिरी, नवाबको बन्दी करनेके लिए मैं अग्रसर हुआ,—इसी समय वह मूर्ति,—वही मातृमूर्ति नवाबके सम्मुख आकर खड़ी हुई—सैकड़ों भय दिखलानेपर भी वह मूर्ति वहांसे नहीं हटी। देखा;—उस बालिकाकी बिना हत्या किये नवाबको बन्दी करना असम्भव है। अकेले एक निराश्रय, असहाय, भागे हुए शत्रुको बन्दी करनेके लिए सेनासहित आया हूं, इसी अमिट कलङ्कके ऊपर पुनः नारी हत्या करनेके लिए मेरा हाथ उठा नहीं। मैंने नवाबको छोड़ दिया। हे श्रेष्ट महीपाल, भारत-भाग्य-विधाता, अपराधी मैं हूं, जो इच्छा हो दण्ड दीजिये, शान्तिपूर्वक उसको ग्रहण करूंगा। किन्तु विश्वासघातका महान कलङ्क राजपूतके उज्वल मस्तकमें न मढ़िये।

"आश्चर्य! राजन्! यह तुम्हारा विश्वासघात नहीं है,—तुम्हारे महत्वका उज्वल आदर्श है—तुमने बन्दीको मुक्ति नहीं दी,—मेरे सिरपर गौरव-मुकुट पहिनाया है। तुम यदि उस क्षुद्र असहाय बालिकाकी हत्या कर,—नवाबको बन्दी करते, तो मेरे ललाटमें कलङ्कका टीका लग जाता और नारीकी हत्या करने

वाला कहलाकर संसार मुझसे घृणा करता—मेरे नामसे सब नाक भौंह सिकोड़ते। और मैं तुम्हारी उस रमणी शोणित-लिप्त तलवारको बलपूर्वक तुम्हारे अङ्गसे ग्रहण कर उस कलङ्कमयी तलवारको अग्निमें भस्म करता।

"राजा टोडरमल, तुम उदार—महानुभाव हो—इसी महानु-भावताके पुरस्कारस्वरूप मैं आज तुमको एक विशाल जागीर प्रदान करता हूं,—और आजसे तुम महाराज—टोडरमल हुए। मनाइमखां! मनुष्य बाहुबलसे वीर नहीं होते। वीर वही है—विपद् आपद्में शत्रुको क्षमा करनेके लिए जिसका हृदय उन्मुक्त है। जाओ, अपने स्थानमें जाओ।

अपमान और लाञ्छनाकी तीव्र चोटसे, ज्वाला जर्जरित हृदयसे मनाइमखां अपने आसनपर जा विराजे।

सम्राटने पुन: पुकारा, "हुसेन कुलीखां।"

सुरूप सेनापति हुसेनकुलीखां, तुम स्वामिभक्त और महायोद्धा हो। तुम पर मैं बंग-विजयका भार अर्पण करता हूं। महाराजा टोडरमल तुम्हारे सहकारी हुए।"

दूसरा परिच्छेद ।

—✪✪✪—

दो वर्ष व्यतीत हो गये ।

राजा हरिनारायणकी मृत्युके पश्चात् दो वर्ष व्यतीत हो गये । सुख-दुःखके साथ साथ दो वर्ष कालके प्रबल ताण्डवसे भूतकालके साथ मिल गये । उत्थान-पतन, जीवन-मरणके साथ साथ दो साल चले गये । अज्ञात देशको अटल नियमके अनुसार कालस्रोतमें बह गये । उसी स्रोतमें दिलीपसिंह गये हैं—यादवलाल गये हैं—उनकी मृत्युके साथ, नवाब दाऊदखां को उत्थान शक्ति देकर दो वत्सरोंने अतीतकी गोदमें मुंह छिपाया है ।

एक दिन प्रातःकाल राजा अमरप्रसाद की अट्टालिकाके फाटकमें एक पठान अश्वारोही आकर खड़ा हुआ ।

रक्षकने कहा "कौन है !"

"मैं नवाब दाऊदखांका दूत हूं । क्या यही राजा अमर-प्रसादका प्रासाद है !"

"हां—तुम क्या चाहते हो ?"

"तुम्हारी रानीके लिए एक पत्र है ।"

"लाओ, दो ।"

अश्वारोहीने पत्र पहरेदारको दिया।

पहरेदारने सेवक द्वारा पत्र रानीके पास भेज दिया।

सुन्दरी रानी ऊर्मिलाने देखा, पत्रके बाहर कोई नाम नहीं है, केवल "मां" लिखा है। विस्मित अन्त:करणसे रानीने पत्र खोलकर पढ़ा। लिखा था—

महिमामयी—करुणारूपिणी जननी!

पुनः तुम्हारी स्मृतिके द्वारपर उपस्थित हुआ हूं। सन्तान शोक, दु:ख, विपद्के समय मातृ-नाम स्मरण करती है। मुगल जल-तरङ्गके समान, असंख्य सैन्य लेकर, कराल मुंह खोले विशाल शरीरधारी दानवके समान, मेरा ग्रास करनेको चले आ रहे हैं। इस युद्धमें मुगल और पठानोंके भाग्यका निर्णय होगा। इस महासमरमें—महासङ्कटमें पठान-भाग्य सागरके जलमें डूबेगा, अथवा हिमालयके शिखरके समान उन्नत होकर संसारमें प्रकाशमान होगा, नहीं जाना जाता। मुगल असीम बलशाली हैं, मैं हीनबल—दुर्बल हूं, मुगलोंकी आधी सेनाके बराबर भी मेरी सेना नहीं है। माता—आज मैं महाविपत्में हूं, जीवन-मरणकी समस्या मेरे सम्मुख उपस्थित है।

शक्तिमयी, इसीलिए आज तुम्हारी सन्तान शक्तिके एक कणकी भिक्षा चाहती है—उसको अपने शुभ आशीषके कवचसे आच्छादित करो, स्नेहके मेहसे उसको स्नान करा दो, उसकी

मलिनता दूर कर दो। शक्तिकणके दानसे उसके हृदयको नव-उत्साह—नई आशासे जागरित कर दो।

माता—एक दिन तुमने स्वयं विपत्ति झेलकर,—मुगलोंके प्रतापको तुच्छ बना, मेरी प्राण रक्षाकी थी,—आज इस घोर विपत्तिमें मुझे क्या अपनी गोदमें शरण नहीं दोगी? उस दिन तुमने कहा था, यदि कभी विपत्ति आवे, खबर देना, सहायता करूँगी। आज मैं विपत्तिसे घिरा हुआ हूं—यही खबर देता हूं। तुम जननी हो, सन्तानके प्रति उचित कर्त्तव्य करो। मालूम होता है, तुम्हारे स्वामी अमरप्रसाद, अपने स्वर्गवासी प्रभु और श्वसुर महाशयके प्रदर्शित पथका ही अवलम्बन करेंगे, मुगलोंकी ही सहायता करेंगे,—तुम्हारे स्वामी असीम शक्ति-शाली हैं, उनका वीरत्व अद्भुत है—इसीलिए उनकी सहायता की प्रार्थना करता हूं—सहायता न भी करें तो निरपेक्ष भावसे रहें—इतना ही कीजिए। अधिक और क्या लिखूं। आशा करता हूं, माताके निकट पुत्रकी प्रार्थना निष्फल नहीं होगी। इति—

तुम्हारी सन्तान—

दाऊद खां।

पत्र पढ़कर, क्षणिक विचारके पश्चात् सुन्दरी रानी ऊर्मिलाने लेखनी लेकर पत्रोत्तर लिखा,—

स्नेहभाजन पुत्र!

तुम्हारा पत्र मिला। तुम इस दीन जननीको न भूले—

इससे मुझको बड़ा आनन्द हुआ। मेरी इस क्षुद्र शक्तिसे जहांतक सम्भव है—जहां तक साध्य होगा, तुम्हारी सहायताके लिए वही करूँगी। समझलो पुत्र, राजपूत-ललना कभी शपथकी बात नहीं भूलती,—शपथ-भंग भी नहीं करती। तुम निश्चिन्त रहो, समय पर मेरी सहायता पाओगे।

इस समय मेरे स्वामी दुर्गमें हैं—तुम्हारे कथनके अनुसार उनसे अनुरोध करूंगी, फिर भी मैं उनके चरणोंकी सेवा करने की अधिकारिणी मात्र हूं, उनको बाध्य करनेका अधिकार मुझमें नहीं है! मैं आशीर्वाद देती हूं, तुम्हारे वीरत्वको देखकर शत्रु-मित्र चकित होवें,—इतिहास अभिमानके साथ तुम्हारे वीरत्व-मण्डित नामको वक्षमें धारण करे। तुम गौरवान्वित होओ। इति—

आशीर्वादिका—

तुम्हारी माता।

पत्र समाप्त कर—पत्रको बन्द कर, पतेके स्थानमें रानीने केवल "पुत्र" लिखा।

इसके पश्चात् सेवकको बुला कर, ऊर्मिला देवीने पठान अश्वारोहीको पत्र देनेके लिए उसके हाथमें पत्र दिया।

यथानियम वह पत्र पठान दूतके हाथमें पहुंचा। पत्र लेकर दूत भी घोड़ा दौड़ाकर चला गया।

तीसरा परिच्छेद।

दुर्गसे घोड़ेपर चढ़कर बाहर आते ही एक अश्वारोहीने आकर राजा अमरप्रसादको रोका।

विरक्त भावसे राजाने पूछा, "तुम कौन हो ?"

"देखते नहीं, मैं एक मुगल-सैनिक हूं।"

"यह तो देख रहा हूं, किन्तु तुम्हारा परिचय ?"

"मैं प्रबल प्रतापी भारतेश्वर अकबरके बङ्ग, विहार, ऊड़ीसाके प्रधान सेनापति अली मुहम्मद-हुसेन कुलीखांका अनुचर हूं।"

"यहां किस कार्यसे आये हो ?"

"कार्य आप ही से है।"

अत्यन्त विस्मयके साथ अमरप्रसादने कहा, "मुझसे ?"

"हां—आपसे।"

"क्या कार्य है कहो ?"

"मुगल-सेनापति हुसेन कुलीखां आपसे सहायताकी प्रार्थना करते हैं। आप किस पक्षको अवलम्बन करेंगे, यही जाननेके लिए मुझको भेजा है। अब कहिए,—आपका अभिप्राय क्या है।"

"यदि पठानोंका पक्ष अवलम्बन किया ?"

"तो युद्धारम्भके पूर्व ही आपका प्रासाद, आपका यह दुर्ग—इसी मिट्टीके साथ मिला दिया जायगा।"

राजाका चेहरा लाल हो गया। आत्म-दमन कर घोर कण्ठसे राजाने कहा, "राजपूतको भय मत दिखलाओ मुगल! राजपूत-जीवनमें और राजपूत-कार्यमें, भयका स्थान नहीं है। जाओ,—अपने प्रभुसे कहो—मैं तुम्हारा पक्ष अवलम्बन करूंगा, परन्तु मुगलोंका प्रताप देख कर नहीं, अपने स्वर्गवासी प्रभुके चरणचिह्नके अनुसार तुम्हारे पक्षकी सहायता करूंगा। पहिलेसे ही इस कार्यके लिए सेना तैयार कर रखी है—कल ससैन्य शिविरमें उपस्थित हूंगा! जाओ—"

दोनोंने घोड़े भिन्न भिन्न दिशाओंकी ओर दौड़ाये।

सुन्दरी रानी ऊर्मिला दूसरी मंजिलसे, एक खुली हुई खिड़कीके सम्मुख खड़ी होकर, दूरस्थित नदीका सौन्दर्य निरीक्षण कर रही थी। रानी बहुमूल्य रत्नालङ्कारोंसे शोभित, स्वर्णयुक्त श्वेत साड़ी पहिने हुई है,—दाहिना पैर किंचित आगेको बढ़ा हुआ है—केश पीठपर लहरा रहे हैं। यह मूर्ति अति सुन्दर है! सन्ध्याके रक्तवर्णके समान, मृदुगामिनी—सङ्गीत-मुखी तटशालिनी नदीके समान यह रूप मनोहर है। लम्बे केश दूरस्थित नीले आकाशमें अङ्कित पर्वत-श्रेणियोंके समान, अथवा ग्रीष्म-ऋतुके मेघोंके समान घने और कृष्ण हैं। अमल-कमल-नयन-युगल तारोंके समान उज्वल, सुचारु मुंहमण्डल वसन्तकी

कुसुम-राशिके समान सौन्दर्यमय, शरद-ऋतुके पूर्ण-चन्द्रके समान दीप्तिमान है।

प्रभातके समान सुन्दर, मलय-समीरके समान स्निग्ध, गङ्गाजलके समान पवित्र—ललित-सरल-विमल हास्य उसके अधरोंमें सैकड़ों चन्द्र-किरणोंके समान लिप्त है। नीले नभो-मण्डलमें उज्वल मेघखण्डके समान—पुष्करिणीके जलमें प्रस्फुटित कमलके समान पवित्र, महिमामण्डित वह मुख-कमल है। सुन्दर सुडौल देहकी गठन, जगत् मनोहर—अति मनोरम है।

सूर्य जिस प्रकार पेड़ोंकी चोटियोंसे, सागरके हृदयसे, आकाशकी गोदको अपनी रक्त आभासे रंजित कर पृथिवीके अन्धकारको दूर कर, दीप्त उज्वल मोहन मूर्तिसे आकाशमें उदय होते हैं,—रानीका मुंह भी इसीतरह पापीके हृदयको पुण्यालोकसे आलोकित कर—उसी प्रकार उज्वल—उसी प्रकार दीप्त है।

चुपचाप राजाने कमरेमें प्रवेश कर उस अनुपम स्वर्गीय सौन्दर्यका कुछ क्षण उपभोग करने बाद प्रेमभरे कण्ठसे कहा, "ऊर्मिला!"

आश्चर्यसे पीछे फिर कर रानीने देखा,—अपने ईप्सित, हृदय-देवता राजा खड़े हैं। लज्जित कण्ठसे रानीने कहा, "चोरके सदृश चुपचाप बिना बोले क्या देख रहे थे प्रभु?"

"क्या देख रहा था? देख रहा था—चन्द्रकिरणोंसे लिप्त सुधामय मुख-कमल,—देख रहा था—रात्रिके नवीन चन्द्रको

छटाके समान समुज्वल, हीरोंकी निन्दा करनेवाले आभामय कुसुमवत् नयन युगल, देख रहा था,—लताओंके समान शोभामयी—खुली हुई केशराशि, देख रहा था—प्रेम-माला—वेष्टित मन-विनोदक-सौन्दर्य ! ऊर्मिला, तुम मानो स्वर्गकी एक झन्कार—एक मधुर भाव—मृत्युलोकमें आ पड़ी हो। मानो विश्व-का सौन्दर्य, प्रकृतिकी हँसी हो। मानो—पवित्रता और सरलता-की मूर्ति हो ! मैं धन्य हूं, मेरे बड़े सौभाग्य हैं, इसीलिए तुम्हारे सौन्दर्य-कोहनूरको हृदयमें धारण करनेका अधिकारी हुआ हूं।"

स्वामीके मुंहसे रूपकी प्रशंसा सुनकर—वायुके झोंकेसे झुकी लताके समान ऊर्मिलाके नेत्र और मुंह अवनत हो गये। लज्जित स्वरसे, धीर कण्ठसे रानीने कहा, "मैं तुम्हारी दासी हूं,—केवल दासी हूं,—यही मेरा गौरव है।"

प्रेम-बाहु फैला कर राजाने रानीको पकड़ कर उसके लाल-कपोलमें प्रेमचिह्न अङ्कित कर दिया और सोहाग, प्रेम और आनन्द भरे स्वरसे कहा, "तुम दासी नहीं ऊर्मिला, तुम मेरे इस विशाल हृदय-राज्यकी अधीश्वरी हो।" प्रेमालिङ्गन—प्रेम-चुम्बनसे रानीकी देह रोमांचित—कम्पायमान हो गई, दोनों विह्वल हो कर उस सुख-अनुभवके निर्मल-विमल स्पर्शमें अपने को भूल गये।

कुछ कालके पश्चात् रानीने अपनेको राजाके बाहु-पाशसे मुक्त कर, प्रेम-कम्पित स्वरसे कहा, "स्वामीके चरणोंमें दासी की एक प्रार्थना है।"

कृत्रिम क्रोधसे राजाने कहा, "जब मैं तुम्हारा स्वामी हूं, तब तुम किस अधिकारसे, मेरे प्रेम-बन्धनसे अपनेको स्वेच्छासे मुक्त कर, अलग खड़ी हो गईं? पहिले मैं इसकी कैफियत चाहता हूं, इसके पश्चात् तुम्हारी प्रार्थना सुनूंगा!"

प्रेम-भरे चित्त और कण्ठसे हंसकर रानीने कहा, "इसके लिए मैं अपराधिनी हूं, स्वामीके विचारसे जो दण्ड हो, उसको ग्रहण करनेके लिए मैं सर्वदा प्रस्तुत हूं।"

"अपराधिनीके हाथ बांधना उचित है,—पहिले तुमको बन्धनयुक्त करता हूं,—इसके पश्चात् विचार करूंगा।"

यह कह कर राजाने एक पुष्पमाला लेकर रानीके पुष्प-कोमल दोनों हाथोंको बांध दिया,—उस पुष्पके समान अङ्गको स्पर्श कर, पुष्प-मालाका सौन्दर्य मानो और भी बढ़ गया।

कृत्रिम गम्भीरतासे राजाने कहा, "अपराधिनी, अब जो कुछ तुम्हें कहना हो, कहो।"

"वक्तव्य यही है, अपराधिनी अपने किये हुए अपराधके लिये हाथ जोड़ कर क्षमा भिक्षा चाहती है। विचारक महाशय, अपराधिनीको मुक्ति देनेकी आज्ञा हो।"

"अच्छा, इस समय यह प्रथम अपराध समझकर तुमको क्षमा करता हूं, किन्तु भविष्यमें ऐसा अपराध न हो।"

मन्द मुसकानसे रानीने कहा "जो आज्ञा, जहांपनाह।"

राजाने रानीके हाथोंसे पुष्पमाला निकालकर कहा, "जाओ इन्दिनी, तुम मुक्त हो, अब अपनी प्रार्थना कहो।"

"इस मुगल-पठानोंके महायुद्धमें किसका पक्ष लेते हो ?"

"यह प्रश्न क्यों करती हो रानी ?"

"बिना कारणके कोई कार्य नहीं होता। स्वामी, यदि किसी पक्षको सहायता देना निश्चय नहीं किया हो तो पठानोंकी सहायता कीजिए।"

"पठान तुम्हारे क्या होते हैं ?"

"पठान मेरी सन्तान हैं, प्रियतम दासीका सविनय अनुरोध है, कि तुम निष्पक्ष रहो,—अन्यथा पठानोंका पक्ष लेकर शस्त्र धारण करो।"

"यह नहीं हो सकता प्रेयसी ! मैं अपने स्वर्गीय स्वामीके चरण-चिह्नके अनुसार ही कार्य करूंगा, विशेषकर मैंने मुगलोंको सहायता देनेका वचन भी दे दिया है।"

"सहायताका वचन दे दिया है ? फिर क्या होगा स्वामी, मैं भी पठानोंको सहायता देनेके लिए वचन बद्ध हो गई हूं। अब क्या किया जाये !"

"इसके लिए इतनी कातर क्यों हो रही हो प्रियतमे ? राजपूतका वाक्य ही सत्य है। राजपूतका सत्य—हिमाचलके शिखरके समान उन्नत, अटल है। सैकड़ों वज्राघातसे भी वह नहीं टलता, आश्रितकी रक्षा करना ही राजपूतका कर्त्तव्य है, चन्द्र-सूर्य विचलित हो जायें, तथापि राजपूतका कर्त्तव्य विचलित नहीं होता—तुम वही राजपूत-नन्दिनी, राजपूत सह-धर्मिणी हो, कर्त्तव्यके लिए जगज्जननीने अपने भक्त वधके समय

दस हाथोंमें दस प्रहरण धारण किये थे,—वही कर्त्तव्य तुम भी पालन करो। विधाताका आशीर्वाद प्राप्त करनेमें समर्थ होओ, राजपूत-ललनाकी गौरव्-रश्मिसे संसारको प्रकाशमान करो। उसी प्रकाशको देखकर मैं भी अपनेको धन्य समझूंगा। मैं तुम्हारी कुछ भी सहायता नहीं करूंगा, स्त्रीके कारण विश्वासघात कर अनन्त नरक, अनन्त कलङ्क सहन नहीं करूंगा।

—कर्त्तव्य कर्म करनेके लिए, आश्रितकी रक्षाके लिए अग्रसर होओ, शक्तिमयी! और कुछ नहीं कर सकता,—तुम्हारी सन्तान दाऊदखांके लिए मनसा, वाचा ईश्वरकी आराधना करूंगा। इस युद्धमें यदि बच गया, आजीवन तुम्हारी श्रेष्ठताको हृदयमें धारण कर, तुम्हारी देवीमूर्तिको नेत्रोंके सम्मुख स्थापित कर पूजा करूंगा, यदि मर गया,—प्रार्थनाकरके मरूंगा—जिससे जन्मान्तरमें भी तुमको अर्द्धाङ्गिनीरूपसे प्राप्त करूं।"

"स्वामी! तो आशीर्वाद दीजिए,—जिससे आश्रितकी रक्षा करनेमें समर्थ हो सकूं। आशीर्वाद दीजिए, जिससे राजपूत-ललनाका कर्त्तव्य भ्रष्ट न हो।"

"प्रिये, मैं आशीर्वाद देता हूं, कर्त्तव्यपालनमें राजपूत-ललनाओंकी आदर्श होओ।"

रानीने भक्तिपूर्ण हृदयसे राजाकी चरण-रज ग्रहण की।

चौथा परिच्छेद।

"हां—

चित्तको लुभानेवाला, हृदय-रञ्जन, नयनाभिराम सुन्दर पुष्प-उद्यान है। चारों ओर—कुञ्ज गुञ्ज लताओंसे सज्जित, कृत्रिम फुहारे, कृत्रिम झरने, कृत्रिम पर्वत, संग मरमरकी मूर्त्तियोंसे सुशोभित हैं। चारों ओर सुन्दर फूल खिल रहे हैं—यह दृश्य अति सुन्दर है! और उस सौन्दर्यको म्लानकर, असंख्य पुष्प-राशिके मध्यमें,—संगमरमरकी वेदीपर पुष्परानीके समान शोभायमान, एक तरुणी बैठी हुई है। तरुणी अपने मनमें कह रही थी "एकदिन, एकही बार उनको देखा था, किन्तु अब भी वह मूर्ति—उस रूपको नहीं भूल सकी। वह कैसी मधुर मोहन मूर्त्ति थी, वह कैसी उज्वल स्निग्ध ज्योति थी, कैसा वीरत्व-व्यञ्जक, तेजप्रदीप्त मुखमण्डल था। मानो पुण्यकी कान्ति, पवित्रताकी प्रभा, सूर्यकी ज्योति थी। वह ज्योति, वह रूप, वह मूर्ति अब भी मानो नेत्रोंके सम्मुख प्रकाशमान है। वह महत्व, वह औदार्य मानवी नहीं है। उन्होंने अपनी विपत्तिको तुच्छ समझकर जब मेरा उद्धार किया, तब ऐसा मालूम होता था, मानो कोई देवता, मेरे उद्धारके लिए मर्त्य लोकमें आविर्भूत हुआ है। अहा! वह कैसा मधुर कण्ठस्वर था! मानों आज

भी वह स्वर, कानोंमें सुनाई दे रहा है। सुनती हूं, उनका नाम अमरप्रसाद है। नाम सुन्दर, कार्य सुन्दर, हृदय सुन्दर। जादूगरके समान एक क्षणमें मुझको अचैतन्य कर गये! उस दिन हृदयमें उनकी मूर्त्ति जो अङ्कित हुई, सैकड़ों चेष्टा करने पर भी वह मूर्ति नहीं मिट रही है, उस नामको भी नहीं, कारण की हूं! ऐसी इच्छा होती है, कि उस मधुर नामका दिन रात जप करूं, उस मूर्तिकी नित्य पूजा करूं। क्या उस मूर्तिको अब न देख सकूंगी? एकबार और आइये। करुणासे भरकर, करुणाकी हंसी हंसकर, करुणाकी धारा अङ्गसे लगाकर, एक बार और आइये, प्रेममय देवता। सुन्दररूप धारणकर, कमल-नयनोंमें मधुर हास्यसे, उदार हृदयमें महिमाकी किरण लेकर आओ, आओ देवता" कहते कहते वह कुसुम-कोमल शरीर कठिन पत्थरकी वेदीपर गिर पड़ा।

तरुणी राजमहलके विख्यात धनी रुद्रपतिकी कन्या—शोभना है।

ज्योत्स्नामयी रात्रि थी। नीले आकाशमें, निर्मल स्वच्छ चाँदनी फैला कर, श्यामल धरणीके ऊपर श्वेत तरङ्ग निक्षेपकर, तृणदलके ऊपर मुक्ताविन्दु छोड़कर, पुष्प-कुमारियोंके घूंघटोंको खोलकर, नदीके हृदय-दर्पणमें शुभ्र, हास्यमय, स्वच्छ मुख-कमलको देखते देखते, कण्ठमें तारा-हार पहिन कर, पृथिवीको कुसुम-भूषणोंसे भूषित कर, चञ्चल दुष्ट चांद आकाशमें हँस रहा था।

इसी समय एक सुन्दरी किशोरीने धीरे धीरे वेदीके निकट आकर कोकिलकण्ठसे कहा "सखी शोभना !"

धीरे धीरे उठकर धीर कण्ठसे शोभनाने पूछा, "कौन, सखी कामना ?"

"हाँ—बहन,—मैं कामना हूं। किन्तु तुमको आज शुष्क और उदास क्यों देख रही हूं बहन ?"

कातर कण्ठसे शोभनाने कहा, "भगिनी ! मेरा सर्वस्व चला गया है।"

"क्या सर्वस्व चला गया ?"

"मेरा हृदय—मन-प्राण, मेरा आमोद-आह्लाद—सुख-शान्ति, मेरे नेत्रोंका प्रकाश, हृदयकी तरङ्ग,—जीवनका सर्वस्व—सब चला गया।"

"सब कहां चला गया ?"

"क्या यह सुनोगी ? सुनो,—आज तुमसे कहती हूं ; अब छिपा न रखूंगी, अब छिपा भी नहीं सकती, हृदय जल कर राख हुआ जा रहा है। दूसरेके निकट हृदयकी कथा कहनेसे आकुल आकांक्षाकी तृप्ति होती है—हृदयका असह्य भार कुछ हलका हो जाता है। इसीलिए आज तुमसे कहूंगी। सुनो बहन,—जिस दिन डाकुओंके हाथ पड़ी—जिस दिन वह डाकू—मेरे नारी-गौरवको पदाघात करनेके लिए उद्यत हुआ—उसी दिन, उसी समय, अग्निके समान तेजस्वी, एक वीर-पुरुषने आकर दस्युके हाथसे मेरा उद्धार किया,—कैसी सुन्दर—

भी वह स्वर, कानोंमें सुनाई दे रहा है। सुनती हूं, उनका नाम अमरप्रसाद है। नाम सुन्दर, कार्य सुन्दर, हृदय सुन्दर। जादूगरके समान एक क्षणमें मुझको अचैतन्य कर गये! उस दिन हृदयमें उनकी मूर्त्ति जो अङ्कित हुई, सैकड़ों चेष्टा से भी वह मूर्ति नहीं मिट रही है, उस नामको भी नहीं भूलती हूं! ऐसी इच्छा होती है, कि उस मधुर नामका दिन रात जप करूं, उस मूर्तिकी नित्य पूजा करूं। क्या उस मूर्तिको अब न देख सकूंगी? एकबार और आइये। करुणासे भरकर, करुणाकी हंसी हंसकर, करुणाकी धारा अङ्गसे लगाकर, एक बार और आइये, प्रेममय देवता। सुन्दररूप धारणकर, कमल-नयनोंमें मधुर हास्यसे, उदार हृदयमें महिमाकी किरण लेकर आओ, आओ देवता" कहते कहते वह कुसुम-कोमल शरीर कठिन पत्थरकी वेदीपर गिर पड़ा।

तरुणी राजमहलके विख्यात धनी रुद्रपतिकी कन्या—शोभना है।

"ज्योत्स्नामयी रात्रि थी। नीले आकाशमें, निर्मल स्वच्छ चाँदनी फैला कर, श्यामल धरणीके ऊपर स्वेत तरङ्ग निक्षेपकर, तृणदलके ऊपर मुक्ताविन्दु छोड़कर, पुष्प-कुमारियोंके घूंघटोंको खोलकर, नदीके हृदय-दर्पणमें शुभ्र, हास्यमय, स्वच्छ मुख-कमलको देखते देखते, कण्ठमें तारा-हार पहिन कर, पृथिवीको कुसुम-भूषणोंसे भूषित कर, चञ्चल दुष्ट चांद आकाशमें हँस रहा था।

इसी समय एक सुन्दरी किशोरीने धीरे धीरे ...दोके निकट आकर कोकिलकण्ठसे कहा "सखी शोभना !"

धीरे धीरे उठकर धीर कण्ठसे शोभनाने पूछा, "कौन, सखी कामना ?"

"हाँ—बहन,—मैं कामना हूं। किन्तु तुमको आज शुष्क और उदास क्यों देख रही हूं बहन ?"

कातर कण्ठसे शोभनाने कहा, "भगिनी ! मेरा सर्वस्व चला गया है।"

"क्या सर्वस्व चला गया ?"

"मेरा हृदय—मन-प्राण, मेरा आमोद-आह्लाद—सुख शान्ति, मेरे नेत्रोंका प्रकाश, हृदयकी तरङ्ग,—जीवनका सर्वस्व—सब चला गया।"

"सब कहां चला गया ?"

"क्या यह सुनोगी ? सुनो,—आज तुमसे कहती हूं ; अब छिपा न रखूंगी, अब छिपा भी नहीं सकती, हृदय जल कर राख हुआ जा रहा है। दूसरेके निकट हृदयकी कथा कहनेसे आकुल आकांक्षाकी तृप्ति होती है—हृदयका असह्य भार कुछ हलका हो जाता है। इसीलिए आज तुमसे कहूंगी। सुनो बहन,—जिस दिन डाकुओंके हाथ पड़ी—जिस दिन वह डाकू—मेरे नारी-गौरवको पदाघात करनेके लिए उद्यत हुआ—उसी दिन, उसी समय, अग्निके समान तेजस्वी, एक वीर-पुरुषने आकर दस्युके हाथसे मेरा उद्धार किया,—कैसी सुन्दर—

अहा ! कैसी सुन्दर वह मूर्ति थी, इसको व्यक्त करनेके लिए, समझानेके लिए—भाषा नहीं है,—वह केवल अनुभव मात्र है। कैसा वीरत्व—कैसा विद्युत्-प्रभाके समान तलवारका चलाना था ! वह समझाया नहीं जाता। देखनेसे ही समझमें आता है। उसने अकेले तीन सशस्त्र डाकुओंको पराजितकर मेरा उद्धार किया। कैसा वह कण्ठ-स्वर था ! मानो संसारके समस्त गायन उसी स्वरसे निकले हैं।—

—मुझे अभिमान था कि मैं अतुल रूपवती हूं; इस संसारमें ऐसा कोई पुरुष नहीं है, हो भी नहीं सकता—जो मेरे यौवन भरे, अनन्त सुषमा भरे रूपसे आकर्षित न हो। किन्तु उस दिन मेरा वह अभिमान—वह धारणा टूटकर चूर चूर हो गई। मेरी ओर केवल एकबार देखकर ही उस देवताने नेत्र नीचे कर लिये। मैं छिप छिपकर उनको देख रही थी। किन्तु दूसरी बार उन्होंने मेरी ओर दृष्टि नहीं की। पिताने उपकारके बदले बहुत ऐश्वर्य प्रदान करनेकी अभिलाषा प्रकट की। युवकने उस अगाध ऐश्वर्यका उपेक्षासे त्याग किया। मैं मुग्ध हो गई, समझ गई—यह देवता है। देवता और किसको कहते हैं,—यही देवता है। मुग्ध हृदयसे मैंने अपना जीवन, यौवन, सर्वस्व उनके चरणोंमें बिना जाने अर्पण कर दिया।"

"तुमने यह ठीक किया है। वह चोर कौन है कहो—पकड़ कर हाजिर करूंगी।"

"वह सामान्य चोर नहीं है, स्वेच्छासे यदि वह चोर अपनेको

पकड़ने नहीं देगा तो पृथ्वीकी अनन्त रूपराशिके विनिमयसे भी कोई उसको पकड़ नहीं सकेगा। वह चोर नहीं,—विधाताके महत्वकी धारा है; वह मनुष्य नहीं—संयमकी सजीव मूर्त्ति है।"

"वह देवता ही सही। देवताका भी एक नाम धाम होता है। तुम्हारे इस देवताका नाम क्या है सखी?"

"उसका नाम—उसका नाम अमरप्रसाद है,—पहिले राजा हरिनारायणके सरदार थे, इस समय अपने गुणोंसे हरिनारायणकी एकमात्र कन्या और वृहत् राज्य लाभकर राजा हुए हैं।"

"कैसे? सरदारसे एकदम राजा—यह कैसे हुआ, सुनना चाहती हूं?"

"वह अत्यन्त गौरवमय कथा—अत्यन्त महिमापूर्ण कहानी है। विस्तारपूर्वक कहती हूं, सुनो.—विस्तारपूर्वक न कहनेसे, उस हृदयमें एक एक कर कितने गुण संचित हैं, यह समझमें नहीं आ सकता।"

शोभनाने पिताके साथ उस मुंगेरकी यात्राका वर्णन, मार्गमें डाकुओंके हाथ पड़नेका किस्सा, दस्यु द्वारा किये गये लाञ्छनका हाल, विशेष कर नारीके लिए जो सर्वापेक्षा विपद है उस विपद्का बयान, धर्म-रक्षार्थं आत्म-हत्याकी चेष्टाकी कथा, दस्युकी चतुराईसे उस चेष्टाके व्यर्थ होनेकी कहानी—और ठीक उसी संकटके समय सहसा भगवानके भेजे हुए स्वर्गीय दूतके समान अमरप्रसादका आगमन—एक एक कर सबका वर्णन किया। अमरप्रसादका शौर्य—उन्होंने किस प्रकार अकेले—बिना

सहायताके—तीन प्रबल डाकूओंको हराया—यह भी कह सुनाया। अमरप्रसादके रूपके सम्बन्धमें भी कहा—कैसा सुन्दर वह देवतुल्य मनोहर शरीर था। जब डाकूओंको पराजित कर, उन्होंने शिविकाके समीप आकर, प्रथम सम्भाषण किया, उस समय वे कैसे शोभायमान हो रहे थे। अमरप्रसादके गुणोंका भी वर्णन किया—कि वह कैसा देव-दुर्लभ चरित है! कितना उदार—कैसा महत् है। पिताने जब उनसे उनके उपकारके बदलेमें पुरस्कार देनेकी बात कही, उस समय उन्होंने "राजपूत कभी उपकारका बदला नहीं चाहते।" कह कर कैसा उदारताका परिचय, कैसे वीर-हृदयका परिचय दिया था। और उस हृदयमें साधारण विनय और सरलता, किस प्रकार काठिन्य और कोमलता एक साथ मिली हुई है—यह उनके उसी एक उक्तिमें ही किस प्रकार परिस्फुट होता है, "साथ यदि जाऊंगा तो यह केवल आपका स्नेह और प्रीति प्राप्त करनेकी आशासे ही जाऊंगा" यह भी कहा। इसके पश्चात् अपने दुःखकी कहानी कही—किस प्रकार हृदय उनके उस रूपकी ज्योतिसे आकृष्ट हुआ, वह्निप्रवेशोन्मुख पतङ्गके समान किस प्रकार मन उनके उस रूपकी ज्वालामें अपनी आहुति देनेके लिए निरन्तर व्याकुल हो रहा है—उस सुख दुःखको सङ्गिनी सखीके निकट शोभनाने आज सभी बातें विस्तारपूर्वक वर्णन कीं।

कामिनाने शान्तिपूर्वक सब किस्सा सुन कर कहा, "भगिनी! मुझको क्षमा करो। बिना जाने मैंने व्यंग किया था—अब

ज्ञान हुआ—वे वास्तवमें देवता हैं। ऐसी इच्छा हो रही है कि, शीघ्र जाकर उनको एक बार देख आऊँ।"

शोभनाने पुनः कहा, "अभी वर्णन समाप्त नहीं हुआ सखी! उन्होंने सामान्य सरदारसे, जिस महत्वके कारण पुरस्कार स्वरूप, राज्य लाभ किया, वह भी कहती हूं, सुनो।" यह कह कर शोभनाने राजा हरिनारायणके अन्यायसे आरम्भ कर वृद्ध दिलीपकी सजाका हाल, अमरप्रसादकी अतुलनीय पितृ-भक्तिकी कहानी, पिताका अपमान निवारण करने जाकर स्वयं कोड़े खाना -राजकुमारीके अनुग्रहसे मुक्ति लाभ करना—परन्तु बिना पिताकी मुक्तिके स्वेच्छासे कारागृह जाना—पिताके अनुरोधसे जननीकी जीवन-रक्षाके अभिप्रायसे घर आना, भीषण प्रतिज्ञा करना—इसके पश्चात् जननीके निकट और श्मशानमें खड़े हो कर, विपद्ग्रस्त राजा हरिनारायणके प्रति उस अद्भुत प्रतिहिंसा-साधनका वर्णन—राज्य और ऊर्मिलाका प्राप्त करना—एक एक कर सब कहा। कहते कहते उसके दोनों नेत्र आँसुओंसे भर गये। गला रुँध गया।

अत्यन्त विस्मयके साथ कामनाने कहा, "सत्य—भगिनी! —ऐसा कभी न देखा, न सुना। वास्तवमें राजा अमरप्रसाद विधाताकी उच्च गरिमा, मनुष्योंके भूषण, संसारके आदर्श हैं।"

शोभनाने कहा, "इसके पूर्व सखी! दुःख किसको कहते हैं, चिन्ता किसका नाम है, मैं नहीं जानती थी। जो चेहरा सतत

हास्य रञ्जित रहता था, जो हृदय नदीके समान चञ्चल—आवेगमय और लहरोंसे युक्त था, वही हृदय आज गाम्भीर्यसे अधीर, चिन्तासे सूखा जा रहा है!"

"सोचती थी,—कलीके समान खिली रहूँगी—फूलके समान खेलती रहूँगी, इसके पश्चात् फूलके समान ही सौन्दर्य और सौरभ छोड़ कर, फूलके समान ही चली जाऊँगी। सोचती थी, जीवन भर कभी विवाह-बन्धनमें आबद्ध नहीं हूँगी, कभी किसी पुरुषको हृदय-दान नहीं करूँगी,—इस समय मेरा वही अभिमानी हृदय—पुरुषका ही उपासक, पुरुषका ही सेवक है!

"सोचती थी—पुरुष रमणीके हाथका पुतला—रमणीके कहनेसे उठता,—रमणीके कहनेसे बैठता है। पुरुष रमणीके लिये कर्त्तव्य, विवेक, सब त्याग देता है—किन्तु जिस दिनसे उनको देखा है, उस दिनसे मेरा वह भ्रम दूर हो गया है। सखी, मेरा सब अभिमान—सब अहंकार—उनके उज्वल प्रकाशकी छटासे गल कर प्रेममें परिणत हो गया है।

"अतुल वैभवकी इस समय मैं अधिकारिणी हूँ,—असंख्य दास-दासी मेरे मनोरञ्जनके लिये, सदा तत्पर रहती हैं, बहु-मूल्य रत्न और आभूषण मेरे पास हैं, किसी पदार्थका भी अभाव नहीं है—किन्तु शान्ति नहीं है, किसीसे सुख नहीं है। सखी, क्यों ऐसा हो गया? जिसको नहीं पाऊँगी, पा भी नहीं सकती,—जो दूसरेके बन्धनमें आबद्ध हो गया है, उसके लिये

हृदय क्यों इतना पागल हो गया है, मन क्यों उसीको चाहता है ? यह मेरी कैसी असम्भव दुराशा है !"

"सखी, प्रेमका यही नियम है ! इसीलिये स्नेहको अन्ध कहा है। स्नेह पात्रापात्रका विचार नहीं करता, जातिभेद नहीं मानता, किसी विघ्न-बाधाको नहीं सुनता । अन्धेकी भाँति सागरगामिनी, उन्मादिनी नदीके समान, केवल प्रबल उच्छ्वाससे, प्रार्थित देवताके चरणोंकी ओर दौड़ा जाता है। बहन ! स्नेह स्वर्गीय वस्तु है, निष्काम स्नेह, केवल देना चाहता है लेना, नहीं। प्रेम मनुष्यको उच्चसे भी उच्चतर बना देता है। यदि इसी प्रकारका प्रेम कर सको,—तो बहन, इसका प्रतिफल एक दिन अवश्यही पाओगी। आभ्यन्तरमें उसकी मूर्ति स्थापित करो, उसके ही कार्य और उद्देश्यमें सर्वस्व उत्सर्ग करो, तो देखोगी उससे कितना सुख, कितनी शान्ति,—कितनी तृप्ति, कितना आनन्द मिलता है।"

सखीको गलेसे लगा कर शोभनाने कहा—"तू ठीक कहती है, तूने मेरी आँखें खोल दी हैं। मनुष्य जिस प्रकार भगवानको सब कुछ उत्सर्ग कर पूजा करता है, उसी प्रकारसे, आजसे मैं उनको सर्वस्व समर्पण कर, उनकी पूजा करूँगी !"

पाँचवाँ परिच्छेद ।

मुगल और पठानोंका तुमुल संग्राम छिड़ गया । रण-भेरियोंका शब्द, वीरोंकी हुङ्कार,—सेनाके उत्साह और कोलाहलसे चराचर कम्पित होने लगे,—मानो विश्वका समस्त कोलाहल उसीमें डूब गया ।

युद्ध होने लगा, प्रलयकारि वायुके समान—जलोच्छ्वासकी भाँति उभय पक्ष एक दूसरेके ऊपर आक्रमण करने लगे ।

अश्वारोहीके साथ अश्वारोही और पैदलके साथ पैदलका घोर युद्ध होने लगा ।

शस्त्रोंकी झन्कार,—आहतोंका विकट आर्तनाद,—मृत्युपथ-गामियोंकी करुण कण्ठध्वनि, घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे, रण-स्थलने वीभत्स भाव धारण किया । मानो वहां दया नहीं—माया नहीं, कोमलता भी नहीं है । वह कैसा कठोर निर्मम है, मानो शमनका राज्य—यमकी लीलाभूमि है । शत सहस्र वीर मर्मभेदी यातनासे व्यथित निःश्वास वायुमें मिलकर देहत्याग कर रहे हैं । केवल मृतदेह रह जाती है,—कोई देखता नहीं—सुनता नहीं ; न एक बूंद कोई आंसू गिराता है और न कोई सहानुभूति ही प्रकाश करता है । उनकी शोणितसे गीली

मृतदेह घोड़ोंके पैरोंसे कुचलकर मनुष्यकी पैशाचिक वृत्तिकी घोषणा कर रही है! हाय राज्य-लिप्सा! तू इतनी प्रबल—इतनी निष्ठुर है।

राजा टोडरमलने अपनी राजपूत सेना लेकर भीम-बलसे पठान-पंक्तिके ऊपर आक्रमण किया। प्रत्याक्रमणसे राजाने समझ लिया, नवाब दाऊदखाँ उनकी अपेक्षा हीनवीर्य योद्धा हैं। नवाबने भी जान लिया—राजा महाशक्तिशाली महावीर हैं।

हुसेन कुलीखांने पठान-सेनापति शमशेरअलीखांके ऊपर आक्रमण किया। हुसेन कुलीखांने देखा—पठान सेनापति हीन-योद्धा नहीं है,—किन्तु मुगलोंकी अपेक्षा—निर्भीक, साहसी, शक्तिमान है,—फिर भी वे मुगलोंके समान शस्त्र-कुशली नहीं हैं। पठानोंकी यह त्रुटि सेनापति शमशेरअलीको विदित नहीं हुई।

इसी समय राजा अमरप्रसादने राजपूत सैन्यके साथ पठान सैन्याध्यक्ष रुस्तमखांके ऊपर आक्रमण किया।

रुस्तमखां शस्त्र-कुशली—शत्रुओंके हृदयमें भय उत्पन्न करनेवाले योद्धा हों या नहीं, किन्तु उनकी धारणा थी—वे अप्रतिद्वन्द्वी वीर हैं, उनको प्रधान सेनापति न बनाना नवाबका पक्षपात है। उन्होंने रणस्थलसे भागनेमें ही समझ लिया—यह पराजय ईश्वरकी प्रेरणा है—इसमें आक्षेप अथवा अपमानकी कुछ बात नहीं है।

रुस्तमखां हिन्दू काफिरोंसे अत्यन्त घृणा करते हैं। उनका

दृढ़ विश्वास है कि—काफिरोंका नाश करनेके लिए पठानोंका जन्म होता है। पठानोंके साथ राजपूत युद्ध करना जानते हैं, यह बात वे किसी प्रकार, प्राणान्त होने पर भी स्वीकार करना नहीं चाहते।

इसीलिए आज राजा अमरप्रसादको आक्रमण करते देख कर उन्होंने अवज्ञासे सेनाको राजाका आक्रमण रोकनेकी आज्ञा दी—स्वयं अग्रसर नहीं हुए। मानो ऐसा करना उनके लिए बड़ा अपमान है।

जब राजा अमरप्रसाद जैसे सुशिक्षित, वीरत्व-उपासक, वीरत्वसे भरे हुए, राजपूत योद्धाके वज्रसम आक्रमणसे—पठान एक एक कर धराशायी होने लगे। तब रुस्तमखां चैतन्य हुए। क्रोधसे अपनी सेनाको लक्ष्य कर कहने लगे,—"पठानो। काफिर सेनाके पैरोंमें पठानोंका मान—पठानोंकी यश-ख्याति—पठानोंका वीरत्व—गौरव—मत डाल देना। इन भेरियोंके तालके साथ—इन शस्त्रोंकी झनात्कारके साथ काफिरोंके-सिरोंपर झपट कर, उनके सर्वाङ्गको जलादो,—भस्म कर दो, काफिरोंका नाश करो।"

नव-उत्साहसे पठानोंने राजपूत सेनाके ऊपर आक्रमण किया। पठान असीम—साहसी जीवनमें सम्पूर्ण ममताहीन हैं। रणक्षेत्र उनके लिए मानो क्रीड़ाक्षेत्र है। शस्त्रोंकी झन्कार मानो बाजेकी झन्कार है,—दुखियोंकी चित्कार मानो आनन्दका कोलाहल है। मानो इसी रणक्षेत्रकी मिट्टीसे उनकी

देह बनी है; कठोरताके रससे परिपुष्ट हुई है—शस्त्र-भोजनसे ही परिवर्द्धित हुई है।

किन्तु पठान शस्त्र-शिक्षा अथवा चतुराईमें सुनिपुण नहीं हैं—इस पर मानो मुगल और राजपूतोंका ही पूर्ण अधिकार है। इसी कौशल—इसी शस्त्र कुशलताके प्रभावसे, पठानोंकी दीप्त वह्नि—राजपूतोंके निकट म्लान हो गई। आत्माभिमानी रुस्तम इस समय तक सेनाकी सहायतासे ही काफिर-युद्धमें विजयी होनेकी आशा कर रहा था। काफिरोंकी शक्तिको अति तुच्छ समझकर वह स्वयं अग्रसर नहीं हुआ था। किन्तु अब स्थिर और निश्चिन्त नहीं रह सका।

अपनी सेनाके मध्यसे शीघ्रतासे घोड़ा दौड़ाकर, राजाके सम्मुख आकर, रुस्तमखांने गम्भीर और तीव्र स्वरमें कहा,—"काफिर!" उसी स्वरसे राजाने भी कहा,—"पठान!" "कुछ सिपाहियोंको मार कर यह मत समझो, कि पठान शक्तिहीन हैं। अभी मैं सशस्त्र और अक्षत देहसे जीवित हूँ। अकेला रुस्तम तुम्हारे समान—दस काफिरोंके आक्रमणको व्यर्थ सिद्ध कर सकता है। यदि प्राणोंकी ममता है,—शस्त्र त्याग कर रमणीके अञ्चल में मुंह छिपालो।"

राजा अमरप्रसादने क्रोधसे, व्यंगपूर्वक कहा,—"इस शिक्षा से पठान रुस्तमखां ही शिक्षित हैं, किन्तु यह शिक्षा आज तक किसी राजपूतने नहीं पाई है, न पावेगा। राजपूत मातृगर्भसे ही वीरत्वका मंत्र ग्रहण कर, वीरत्वका व्रत लेकर, वीरत्वकी

कहानी सुन कर ही भूमिमें प्रवेश करता है। जीवनके अन्तिम काल तक राजपूत अपने वीरव्रतको नहीं भूलता—राजपूतके कोषमें, राजपूतके इतिहासमें, राजपूतके जीवनमें, भागनेका कलङ्क एक तिलभर भी नहीं है; पठान ! मैं उपदेश नहीं चाहता—मैं चाहता हूँ युद्ध।"

"पठान-पद-दलित—निपीड़ित,—मुगलोंकी स्तुति करने वालेके मुंहसे क्या ये वीरताके वाक्य शोभा पाते हैं ? आज तुम्हारी देहको पददलित कर समझा दूंगा—पराधीन जातिका वीरत्व मुंहमें होता है, कार्यमें नहीं।"

"और मैं भी प्रतिज्ञा करता हूं—आज तेरी देहमें लात मार कर समझा दूंगा कि, राजभक्त, शान्तिप्रिय हिन्दू पराधीन होते हुए भी धर्म-कर्ममें, बुद्धि-वीरतामें विजेता जातिकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ हैं।"

"तो अपने देवताको स्मरण कर, काफिर !"

"तू भी अपने अल्लाका स्मरण कर, पठान !"

दोनोंने एक दूसरेके ऊपर भीषण आक्रमण किया। दोनों घोड़ों पर सवार हैं। दोनों समान योद्धा हैं। क्रोधसे उन्मत्त सेनाध्यक्ष रुस्तमखांने—समस्त शक्तिसे राजाके ऊपर आक्रमण किया। किन्तु विचक्षण बुद्धिमान,—कौशल-निपुण राजा, रुस्तमखांके प्रति आक्रमण न कर, केवल आत्म-रक्षा मात्र करने लगे।

बहुत देर तक युद्ध होता रहा। राजाका कौशल सार्थक हुआ। बहुत समय तक प्रबल शक्तिसे राजाके ऊपर आक्रमण

करनेके कारण, वीराभिमानी रुस्तमखांकी देह दुर्बल हो गई, हाथ थक गये, मुष्टि शिथिल हो गई।

यह उत्तम सुयोग देख कर राजाने पठानके हाथमें प्रचण्ड विक्रमसे शस्त्राघात किया। इस आघातसे रुस्तमखांकी तलवार हस्तच्युत होकर बहुत दूर जा गिरी। पलमात्र भी विलम्ब न कर राजाने बायें हाथसे रुस्तमखांको खींचा। महा-अभिमानी-सेनाध्यक्ष घोड़ेकी पीठसे मिट्टीमें गिरा। इसी समय राजाने भी घोड़ेसे उतर कर, रुस्तमखांको लक्ष्य कर कहा, "अब समझलो, प्रत्यक्ष देखो, हिन्दू पराधीन जाति होने पर भी वीरतामें, शस्त्र-शिक्षामें हीन नहीं हैं,—यह बात लात मार कर तुमको समझा देता हूं। वाक्यके अन्तमें राजाने जोरसे रुस्तम खांकी पीठ पर पदाघात किया।"

रुस्तमखांको ऐसा अनुमान हुआ—मानो बहुत ऊँचेसे फेंका हुआ, एक बड़ा भारी लोहेका मुद्गर उसकी पीठ पर आ गिरा।

घोड़े पर सवार होकर राजाने पुनः कहा,—"पठान—अब जीवनमें राजपूतके आत्म-सम्मानपर कभी आघात न करना—अन्यथा राजपूत-ललनाकी चरण-रेखा तुम्हारी पीठमें अङ्कित होगी।"

यह कह कर राजाने अपना घोड़ा बढ़ाया। पीछेसे उनकी विजयी राजपूत सेना छाती फुलाकर और मस्तक उन्नत कर चली।

जहां तक दृष्टि पहुंची रुस्तमखां ज्वलन्त अग्निके समान अपने दोनों विशाल नेत्रोंसे राजाकी ओर देखता रहा। मानो वह इन्हीं नेत्रोंकी तीव्र क्रोधाग्निसे ही राजाको भस्म करना चाहता था। वास्तवमें रुस्तमखांकी इच्छा भी थी—इसके दण्डस्वरूप, राजाको नखोंसे विदीर्ण करूं—अथवा प्रचण्ड मुष्टिके आघातसे सिर चूर चूर कर दूं और उसकी देहसे कुत्ते उदर पूर्ण करें। किन्तु यह मानो उसकी शक्ति-सामर्थ्यके बाहर है। निष्फल क्रोधसे वह केवल राजाकी ओर देखता ही रह गया।

छठा परिच्छेद।

राजा जब नेत्रोंकी ओट हो गये,—तब अभिमानी रुस्तम धूल झाड़कर उठ खड़ा हुआ। पीठमें जोरका दर्द हो रहा था, पर पीठपर हाथ फेरनेके लिए भी लज्जा और घृणासे उसका हाथ सङ्कुचित हो गया। अपनी सेनाके सम्मुख एक काफिर द्वारा इतना बड़ा अपमान उसे कैसे सह्य हो सकता था। मानो उसकी छातीके ऊपर हिमालयका भार पड़ गया। उदास हो, रुस्तमखांने घोड़ेपर सवार होकर बड़ी शीघ्रतासे अपने शिविरकी ओर प्रस्थान किया।

उस समय जिसतरह दिनभरके कठोर परिश्रमसे, दिनमणि

रक्तवर्ण धारणकर अस्ताचलको जा रहे थे ; ठीक उसीतरह रुस्तमखांके समस्त मुखमण्डलने भी लाल वर्ण धारण किया था। हृदयमें उसी प्रकारका एक लाल प्रवाह वह रहा था, जिसके उत्तापसे रुस्तमखांका समस्त हृदय, मस्तक सब कुछ ज्वालामय हो गया। प्रत्येक रोमकूपमें भी मानो वह उत्ताप बह रहा था। उसकी भीषण दाहने रुस्तमखांको पागल बना दिया था।

पागल रुस्तमखां शीघ्रगतिसे घोड़ा दौड़ता हुआ शिविरके सम्मुख जा पहुंचा। घोड़ेकी गति सम्पूर्णरूपसे थमनेके पहिले ही रुस्तम घोड़ेसे कूद पड़ा। इसके पश्चात् नशेबाजके समान हिलते डोलते अपने खीमेमें प्रवेशकर शस्त्र दूर फेंक दिये। मानव-शोणित-भक्षक कृपाणने स्वामीके इस अवज्ञाके क्रोधसे पत्थरकी मूर्ति तोड़ डाली ;—रुस्तमका उस ओर ध्यान नहीं है। उस समय उसके समस्त इन्द्रियोंमें अग्नि जल रही थी। रणकी पोशाक भी मानो तप्त हो गई थी। रुस्तमने पगड़ी, बख्तर प्रभृति सब अलग फेंक दिये। निरपराध बेचारे खंजरके समान बिना प्रतिशोध लिये, वे भूमिमें पड़े रहे।

स्वामीकी ऐसी उग्रमूर्ति देखकर पहरेदार सशंकित होकर दूर ही खड़े रहे। शङ्काकुल चित्तसे ईश्वरके निकट अपनी रक्षाके निमित्त प्रार्थना करने लगे।

क्षणभर बाद रुस्तमखां एक कोमल, सुन्दर आसनके ऊपर विराजमान हुए। वह आसन सर्वापेक्षा कोमल होनेके कारण

उनका अत्यन्त प्रिय था, अत्यन्त आदरणीय था—आज वह आसन भी उनको अग्निवत् प्रतीत होने लगा। मानो आज उसमें भी किसीने विष छिड़क दिया हो। रुस्तम सांपके काटे हुएके समान कूद कर अलग खड़े हो गए। उनके उस प्रवल देह भारसे आसन अपने स्थानसे किञ्चित खिसक गया।

पुनः इधर उधर टहल कर रुस्तम अपने जीवनकी घटनाओंपर विचार करने लगे। किन्तु अपने समस्त जीवनमें इस प्रकारके हृदय-विदारक अपमानका स्मरण नहीं हुआ। पठानोंके बहुत समयके इतिहासका स्मरण किया, किन्तु इस प्रकारका पराजय ढूंढ़ कर भी नहीं मिली। आज उसी अपमान—उसी पराजयकी चोट उसके अङ्गमें लिप्त है। अपमान! अपमान! मेरा अपमान, पठानोंकी कीर्तिकोरिट—वीरत्व स्तम्भ तोड़ दिया है। हिमालयके शिखरके समान रुस्तमके अभिमानमें पदाघात किया है। इस अपमानकी तीव्र वह्नि,—मेरी समस्त देहके ऊपर अग्निके प्रवाहके समान बह-रही है। आह,—बड़ी ज्वाला,—बड़ा ताप है—जल गया हूं;—मैं जल गया हूं; भूलना—भूलना चाहता हूं, इसी क्षण भूलना चाहता हूं,—अन्यथा दग्ध हो जाऊंगा,—जल कर भस्म हो जाऊंगा।—यह कौन आ रहा है?"

स्वामीके आह्वानसे एक काला दास आया और भयभीत हो कर दूर खड़ा रहा।—कोई आया या नहीं, यह देखनेका उस समय रुस्तमखांको अवसर नहीं था।

मनुष्यके प्रवेश करनेके अनुभवसे ही रुस्तमखांने कहा, "ऐ बेईमान शराब लाओ,—शराब—लाओ,—जल्दी—शराब लाओ —कमबख़्त !"

प्रभुका मिष्ट भाषण सम्पूर्ण होनेके पूर्व ही वह कृष्ण-मूर्ति अन्तर्द्धान हो गई। शीघ्र सुमनोरम चांदीके थालके ऊपर स्वच्छ स्फटिकवासिनी, लालवरणी, नयन शोभिनी, सुरा ! मनो-हारीणी,—विलासीकी सहचारिणी, हास्यमयी, सुधामयी सुरा-सुन्दरीको लेकर वह कमरेमें आया। सुरा-सुन्दरीको देखकर ही रुस्तमको चुम्बनेच्छा प्रबल हो उठी। यथास्थान मद्यपात्र रखनेके पूर्व ही रुस्तमने हाथ फैलाया। सेवकने भी प्रभुके सम्मुख खड़े होकर पात्राधार धारण किया।

स्वामी और सेवक दोनोंके ही हाथ कांपने लगे। स्वामीका हाथ कांपने लगा क्रोधसे, सेवकका शङ्कासे। दोनोंके कम्पाय-मान हाथोंसे—मद्यकी धारा पात्रके साथ मधुर झन झन शब्द कर भूमिमें गिर गई। अभागिनी मदिरा सेनाध्यक्ष रुस्तमखांके चुम्बनसे वंचित हो कर अभिमानके साथ धूलमें आ गिरी।

सुरा सुन्दरीके सरस अधर पानसे वंचित होकर रुस्तमखांने क्रोधपूर्वक चित्कार कर कहा,—"बदतमीज़ कमबख़्त ! निकल निकल—अभी निकल उल्लू !"

और भी अधिक कम्पायमान होकर सेवक चला गया। उसको जाते हुए देख कर पूर्ववत् भावसे रुस्तमखांने कहा,—

"ऐ गीदड़—कहां जाता है,—फिर—फिर ले आ जल्दी—

लेआ",—प्रत्येक शब्दके अन्तमें झुक झुक कर सलाम करते हुए सेवक व्याघ्रके मुंहसे मुक्त हुए के समान चला गया और शीघ्र पूर्ववत् भावसे शराब लेकर अल्लाहका नाम स्मरण कर उपस्थित हुआ। इस समय रुस्तमखांने हाथ नहीं पसारा। सेवक मद्यको प्रभुके सम्मुख रख कर चुपचाप चला गया।

रुस्तम उस अपमानको भूल जानेकी आशासे मरुभूमिके प्यासे यात्रीके समान कितनी ही मदिरा पी गया। किन्तु वह भूला नहीं, वरं स्मृति और भी स्पष्टरूपसे जागरित हो कर उसके हृदयको मन्थन करने लगी। खां साहब पुन: आसन त्याग कर टहलने लगे। क्षणिक टहलनेके उपरान्त एक दूसरे आसन पर आ बैठे। पुन: उस आसनको भी त्याग कर दूसरे आसनपर,—पुनः अन्य आसनपर—इसी प्रकार कमरेके समस्त आसनोंपर एक एककर बैठे। निर्दिष्ट आसनके अतिरिक्त इन सब स्वर्णमण्डित आसनोंको केवल अन्य लोगोंके अतिरिक्त प्रभुको धारण करनेका सौभाग्य एक दिन भी प्राप्त नहीं हुआ था,—आज ये समस्त आसन—अपने प्रभुको धारण कर,— अपने कार्यकी सफलता अनुभव करने लगे।

शराहतके समान समस्त कमरेमें चञ्चल पैरोंसे रुस्तमखां टहलने लगे।

उनकी उस समयकी मूर्ति बड़ी भीषण थी। दोनो नेत्र विस्फारित,—प्रज्वलित,—बाल बिखरे हुए—समस्त वदन रक्त अरुणके समान दीप्तिमान, दोनों हाथ मुष्टिबद्ध, समस्त शिर

फूला हुआ, वास्तवमें वह मूर्ति—अत्यन्त भयानक थी, मानों वह मूर्ति मनुष्यकी नहीं, शैतान की थी।

रुस्तमखांने सोचा था ओह,—जिस काफिरके साथ—युद्ध करनेमें मैं अपना अपमान समझता था,—जिस काफिरका वध करना धर्म समझा था—जिस काफिरको पशुकी अपेक्षा भी अधिक घृणा करता था! ओह! वही—यह सोचतेही हृदय यातनासे गगन विदारक चित्कार करना चाहता है,—आत्महत्या करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है। नहीं, इसका एक प्रतिविधान चाहता हूं,—बदला चाहता हूं,—निर्मम बदला चाहता हूं,—जिसको देख कर शमनका हृदय भी आतङ्कसे दहल उठेगा,—निष्ठुर बदला चाहता हूं,—जिसकी यातनाके आर्तनादसे कालके नेत्रोंसे भी अश्रुधारा छूटेगी। मैं बदला चाहता हूं—बदला चाहता हूं—यह कौन आ रहा है,—जल्दी नसीरखांको बुलाओ।"

सेवक कमरेमें प्रवेश करनेके पूर्व ही स्वामीकी आज्ञा जान कर—आज्ञा पालनार्थ चला गया।

नसीर रुस्तमका एक प्रिय अनुचर अथवा मंत्री, प्रशंसक, मित्र सब कुछ था।

नसीरने प्रसन्न चित्तसे कमरेमें प्रवेश किया। किन्तु रुस्तमखांकी दानवी मूर्ति देख कर, हंसीके स्थान पर मुंह पर आतङ्क छा गया।

नसीरने सोचा था, उसका भाग्य विधाता रुस्तमखां रणमें

विजयी हो कर आया हैं,—उसका वीरत्व गान कर, प्रशंसाको अविरल वाक्य-वर्षासे स्वामीका चित्त प्रसन्न कर पुरस्कार प्राप्त करूँगा। किन्तु यह क्या! यह कैसी घटना घटी,— इस प्रकारकी रुस्तमखांकी वीभत्स मूर्ति नसीरने पहिले कभी नहीं देखी थी, विस्मयसे प्रभुकी ओर देख कर, किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा खड़ा रह गया।

नसीरको देख कर रुस्तमने कहा, "तुम आ गये हो नसीर! मैं तुम्हारी ही खोज कर रहा था। तुमको किसलिये ढूंढ़ रहा था, जानते हो? आज एक घृणित हेय काफिरने मेरा सर्वाङ्ग अपमानसे अर्जरित कर दिया है,—उसी विधर्मीने मेरे अभिमानके सिरमें पदाघात किया है। मेरा मेरुदण्ड तोड़ दिया है। रुस्तमखां इस प्रकार जीवन भर कभी किसीके निकट अपमानित नहीं हुआ। बड़ा अपमान—काफिरके हाथसे अपमान! इस तीव्र अग्निमय अपमानका ज्वाला किसी प्रकार बुझ नहीं रही है। मदिरा उसकी उग्रताको और भी बढ़ा रही है! किस प्रकार यह तीव्र वह्नि शीतल होगी, यही पूछनेके लिए तुमको ढूंढ़ रहा था—कहो, कहो नसीर—यह आग कैसे बुझेगी?"

"प्रतिशोधसे।"

"हां ठीक कहते हो—किन्तु किस प्रकार?"

"पठानोंका प्रतिशोध है—आत्माका विनिमय आत्मा, शोणितका विनिमय शोणित।"

"नसीर, तुमने मेरे हृदयमें उत्पन्न हुई बातोंकी प्रतिध्वनि की है। जिस प्रकार, और जैसे भी होगा, प्रतिशोध लूँगा। मैं यह दृढ़ प्रतिज्ञा करता हूँ। दया, धर्म, पाप, पुण्य सब भले ही चले जायें,—यदि नवाब भी क्रोधित हो जायें, कर्मच्युत भी हो जाऊं, मार्गका भिखारी भी भले ही हो जाऊँ, तो भी नहीं हटूंगा, फिर भी प्रतिशोध लेना नहीं भूलूँगा। भूलूँगा नहीं, हरगिज़ न भूलूँगा।

सातवाँ परिच्छेद।

भीषण अन्धकारयुक्त नीरव गम्भीर रात्रि है। सुप्त, स्तब्ध रात्रि है। केवल झींगुरका ऐक्यतान, शृगालकी तूर्यध्वनि उल्लूका कर्कशनाद सुनाई दे रहा है। आकाशमें तारोंकी पंक्ति और पेड़ोंमें जुगनू भरे हुए हैं। पृथ्वीके इस घोर अन्धकारको दूर करनेके लिए केवल तारे हंस रहे हैं; उनके हास्यसे प्रकाश हो रहा है। उनके हास्यको कोई नहीं देखता, इसीलिये वे हंस रहे हैं,—मानो हँसनेके लिए ही उनका जन्म हुआ है और हास्यही उनका सुख है। ऐसा प्रतीत होता है, उन्होंने यह शिक्षा पुष्पसे पाई है।

इसी अन्धकार जगत्की गोदमें एक विस्तृत मैदानमें

मुगलोंका विशाल शिविर है। शिविर अनेक भागोंमें विभक्त है—एक ओर मुगल सेनापति और सैन्याध्यक्षगण हैं,—दूसरी ओर महाराज टोडरमलका शिविर है। दोनों ओर, और पीछे, मुगलोंके सहायक समस्त राजाओंके शिविर हैं। मध्यमें वृक्षादि हैं, इसलिए पीछेका शिविर किञ्चित दूरपर है। यही पीछेका शिविर राजा अमरप्रसादका है।

रात्रिका यौवन चला गया है। पञ्चमीका क्षीण चन्द्र-प्रकाश, जो उसके हृदयमें खेल रहा था, वह भी बुझ गया है। रात्रि अब भी प्रौढ़, गम्भीर और धीर है। यौवनहीन रमणीके समान किन्तु म्लान और विमलीन है। यौवनकी उद्दाम वृत्ति जिस प्रकार अधिक उम्रमें हृदयमें सो जाती हैं, उसी प्रकार यौवनहीना यामिनीके हृदयमें सब सोये हुए हैं। यौवनकी सैकड़ों वासनाओंके बदले, प्रौढ़ अवस्थामें भी जिस तरह दो चार वासनाएं जागरित रहती हैं, इसी तरह प्रौढ़ा—यामिनीके हृदयमें भी दो चार वसनाओंके सदृशही, दो चार जीव-जन्तु, दो चार पशु-पक्षी जागे हुए हैं। और जागे हुए हैं, स्थान स्थान पर मुगल और पठान शिविरोंके कर्त्तव्यपरायण सशस्त्र प्रहरी।

अपने शिविरके भीतर राजा अमरप्रसाद एक उत्तम पलंग पर, धवल कोमल शय्यापर सो रहे हैं। निद्रादेवीके कुसुम पराग स्पर्शसे दोनों कमल-नयन मुद्रित हैं—चेहरेपर चिन्ताकी रेखा है। विभीषिकाकी छायाका लेश मात्र भी नहीं है।

सारल्य मण्डित उस सुन्दर चेहरेकी आभासे,—स्वर्णके समान उज्वल देहकी प्रभासे कमरेकी शोभा बढ़ रही है।

इसी समय धीरे धीरे बड़े कौशलके साथ कतिपय कृष्णवस्त्राच्छादित मनुष्योंने कमरेमें प्रवेश किया। सभीके हाथोंमें कृपाण थे—कमरेमें प्रवेश करते ही, कमरेके जिस स्थानमें जो शस्त्र था, उसको लेकर वे शय्याकी ओर अग्रसर हुए। शय्याके निकट आकर उन्होंने देखा, कि राजाके निकट ही एक तीक्ष्ण मूल्यवान खड्ग रखा है। उनमेंसे एक मनुष्य उसको भी हस्तगत करनेके लिये अग्रसर हुआ। धर्म धार्मिककी रक्षक,—तलवार उस व्यक्तिके हाथसे सशब्द नीचे गिरी। उस शब्दसे राजाकी निद्रा भङ्ग हुई। बड़े ही आश्चर्यके साथ राजाने अपने निकट कतिपय कृष्ण वस्त्राच्छादित व्यक्तियोंको खड़े देखा। राजाने सोचा ये डाकू हैं। शय्यासे कूदकर अपने शस्त्रको ग्रहण करनेकी अभिलाषासे देखा कि शस्त्र नहीं है। गरज कर राजाने कहा,—"देखता हूँ कि डाकुओंने मेरे शस्त्र अपहरण कर लिए हैं। किन्तु निःशस्त्र होते हुए भी तुम्हारे दो एक मनुष्यों की हत्या बिना किये मैं नहीं मरूँगा, यह निश्चय जानो। क्यों प्राण गँवाते हो,—यह मोतियोंकी माला, हीरेकी अंगूठी और धन देता हूँ, लेकर चले जाओ।"

उनमेंसे एक दीर्घाकार व्यक्तिने अग्रसर होकर तीव्र व्यंग मिश्रित कण्ठसे कहा, "मैं तेरा द्रव्य लेनेके लिए नहीं आया हूँ, काफिर।"

"तब क्या लेनेके लिए आया है बर्बर !"

"तेरी जान !"

"समझ गया हूं, तू तस्कर नहीं—दस्यु नहीं है—मेरा शत्रु है। इसके पश्चात् राजाने उच्च कण्ठसे कहा,—ऐ कोई है, शीघ्र एक शस्त्र—एक शस्त्र लाओ।"

अभ्यागमी दीर्घाकार पुरुषने कहा,—"कोई नहीं है, जो दो एक प्रहरी जागे हुए थे,—उनको चिरनिद्रित कर आया हूँ।"

क्रोधसे भरकर राजाने कहा, "तू क्या सियार है !"

"सियार नहीं,—तुम्हारा कालरूपी रुस्तम खां हूं। रुस्तम खांने कृष्णावरण हटा दिया—उसका असली रूप प्रकट हुआ।"

राजाने देखा कि वह सत्य ही रुस्तम खां है।

रुस्तम खांने अपने अनुचरोंकी ओर देखकर कहा,—"बन्दी करो—इस काफिरको।"

क्रुद्ध होकर राजाने कहा—"किसकी क्षमता है, राजपूतकी देहमें प्राण,—नाड़ियोंमें शोणितके रहते हुए उसका अङ्ग स्पर्श करनेकी ताकत किसमें है ?"

राजाने पलंगको ऊपर उठा कर बड़े ज़ोरके साथ भूमि पर पटका—उस बड़े आघातसे लोहा भी चूर्ण हो जाता—काठ, देह और पलंगका तो कहना ही क्या। पलंग टूट गया—राजाने उसीका एक लम्बा काठ उठा कर कहा,—आओ, कौन आयेगा ! कौन प्राण देना चाहता है, आओ।

रुस्तमखाँने पुनः राजाको बन्दी करनेकी आज्ञा दी। एक साथ—आठ दश तीक्ष्ण कृपाण उठे।

राजाने उसी काठके डंडेके ऊपर भरोसा कर उनके ऊपर आक्रमण किया।

किन्तु एक साथ आठ दश सबल सैनिकोंके तीक्ष्ण शस्त्राघातसे वह डंडा क्रमशः कट कर समाप्त होने लगा।

राजाने सोचा—आज उद्धार होना असम्भव है। चित्कार कर राजाने कहा,—"रुस्तम—रुस्तम—तुम पठान हो, यथार्थ वीर, प्रकृत योद्धा हो;—मेरा सहायक कोई नहीं है—और तुम्हारे सहायक दस सशस्त्र सैनिक हैं;—मेरा शस्त्र एक क्षुद्र काठका डंडा है—तुम्हारे शस्त्र दीप्तिमान कृपाण हैं,—इससे चिन्ता नहीं, दुःख नहीं है—किन्तु निशस्त्र अवस्थामें दश सैनिकोंसे घेर कर मुझको पशुके समान निशस्त्र वध मत करो, —एक शस्त्र दो।"

विकट हास्यके साथ रुस्तमखाँने कहा,—"हा—हा—हा—तुम्हारी हत्या पशुके समान ही करूंगा।"

"यही क्या पठानोंका वीर धर्म है?"

"हां—यही पठानोंका वीर-धर्म है!"

"मिथ्या है"—चारों दिशाओंको कम्पित कर गम्भीर ध्वनि हुई—"मिथ्या है।"

वाक्यके साथ—बहुमूल्य आभूषणोंसे विभूषित एक दिव्य-कान्ति पुरुषने उस कमरेमें प्रवेश किया।

सब अवाक—मूत मूर्तिके समान निश्चल—विस्मयसे अभिभूत होकर सभी उसके मुंहकी ओर देखते रह गये।

विस्मय जब दूर हुआ—तब कमरेके सब लोगोंने भूमि स्पर्श कर सम्मानके साथ अभिवादन किया। आगन्तुक व्यक्तिने कहा,—"रुस्तम! तुम वीरोंकी कालिमा हो। पठानोंके कलंक हो—तुमको कठोर दंड देता किन्तु यह घोर युद्धका समय है,—और तुम्हारा प्रथम अपराध है—इसीलिए इस समय तुमको क्षमा करता हूं—किन्तु पुनः यदि कभी तुमको निशस्त्र व्यक्तिके प्रति शस्त्र उठाते देखूँगा, उसी क्षण तुमको प्राणदंडकी सजा दूंगा। जाओ,—इसी क्षण दल सहित इस स्थानको छोड़कर चले जाओ। जाओ, जाओ।"

आंखें नीचीकर, मस्तक झुका, चुपचाप रुस्तम चला गया,—नवाबने भी प्रस्थान किया। राजाने सोचा—क्या यह वही अत्याचारी नवाब दाऊद खां है,—यह मानो एक गरिमाका संगीत, वीरत्वके उज्ज्वल प्रकाशकी एक छटा है।

आठवाँ परिच्छेद।

एक सुन्दर शोभायमान कमरेमें एक सुन्दर सुकोमल आसनपर रानी ऊर्मिला विराजमान हैं। रानी राजाके लिए चिन्तामग्न है।

सहसा रानीकी चिन्ता-ग्रन्थिको छिन्नकर एक नारीका आगमन हुआ।

रानीने देखा,—कान्तियुक्त कुमुदिनीवत् रमणी अति सुन्दरी है, किन्तु अत्यन्त विमलीन है। पूर्णिमाके पूर्णचन्द्रके समान मुखमंडल अति सुन्दर है, किन्तु वह मानो तरल शुभ्र मेघसे घिरा हुआ है;—पुष्पोंसे भरे पुष्पोद्यानके समान देह भी अत्यन्त मनोरम है, किन्तु मानो किसी निर्दयके कठोर कर-पीड़नसे विवर्ण हो रहा है। मृदुल-मधुर कण्ठसे रानीने पूछा,—

"विद्युत्-वरणी रमणी, तुम कौन हो ?"

रमणीने भी वैसे ही स्वरसे उत्तर दिया,—

"मैं अपना और क्या परिचय दूँ रानी ? मेरा एकमात्र परिचय यही है, कि मैं अभागिनी हूं। और यदि आप अधिकार दें तो आपकी छोटी बहन हूं।"

"तुम अभागी हो! ऐसी अतुलनीय, असीम रूपराशिसे विधाताने जिसकी सृष्टि की है, वह कभी अभागी हो नहीं सकती। तुम राजरानी हो, और तुम जो भी हो, आजसे तुम मेरी छोटी बहिन हो। आओ मेरी रहस्यमय भगिनी, कमरेके भीतर आकर, मेरे निकट बैठो। मैं तुम्हारे हृदयकी कथा सुनना चाहती हूं।"

इतना कह रानीने, उठ कर बड़े आग्रहके साथ रमणीका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा। इसी समय उसने देखा कि उसके पीछे एक और नारी है—उसके हाथमें विचक्षण

कारीगरी किया हुआ बहुमूल्य सन्दूक है। रानीने पूछा,—

"यह कौन है ?"

"यह मेरी सहचरी है।"

"आओ बहिन, तुम भी आओ।"

रानीने रमणीको बड़े आदरके साथ अपने आसनके निकट बैठाया और आप भी बैठ गई। सहचरी एक दूसरे आसनपर बैठी।

मुस्कुराते हुए, स्नेहपूर्ण स्वरसे रानीने कहा,—बहिन ! मेरे निकट कुछ छिपाना नहीं होगा, रानी ऊर्मिला किसीको बहिन कहकर भगनीत्वका अधिकार देकर, एक आसनमें कभी नहीं बैठी। तुम्हारा राजेन्द्राणीके समान उत्तम सौन्दर्य, शिष्ट, शान्त और वाक्य, भाषाविन्यास, चलन, अङ्गचालन प्रत्येक तुम्हारी उच्चताके परिचय की घोषणा कर रहे हैं। यदि यथार्थमें मुझको ज्येष्ठा भगिनी समझो तो मुझसे कुछ न छिपा कर अपना सारा सत्य परिचय दो।"

"मैं रुद्रपतिकी कन्या हूं, नाम—शोभना है।"

"कौन रुद्रपति ? धनीश्रेष्ठ, कमलाके श्रेष्ठपुत्र, रुद्रपतिकी कन्या हो ?"

"हां बहिन, मैं उन्हीकी अभागी कन्या हूँ।"

कुबेरका ऐश्वर्य तुम्हारे चरणोंमें है, तुम अभागी कैसे हो, बहिन ?"

"ऐश्वर्यके विनिमयसे क्या सब कुछ पाया जाता है बहिन ?"

"सब कुछ नहीं पाया जाता, यह सत्य है। समझ गई हूं, बहिन, तुमको एक अभिलषित वस्तुका अभाव हुआ है। अन्यथा तुम्हारे लिए रूप, ऐश्वर्य किसीका भी अभाव नहीं है। देख सुनकर विवाह क्यों नहीं कर लेती' !"

"नहीं बहन, यह हृदय बहुत पहिलेसे ही अयाचित भावसे एक देवताके चरणोंमें उत्सर्ग कर दिया है।"

"अच्छा, वह भाग्यशाली पुरुष कौन है, जिसने तुम सरीखी अतुलनीय रमणीके हृदयपर अधिकार किया है! वह कौन है !"

"वह एक योद्धा है। वास्तवमें वह महा भाग्यवान पुरुष है। वीरत्वमें वह प्रतिद्वन्दीहीन, महत्वमें अतुलनीय है—उसका रूप अनन्त, गुण भी अनन्त हैं। मानो स्वर्गकी एक कल्लोल संसारको शिक्षा देनेके लिए मर्त्यलोकमें उतर आई है।"

"क्या वे जानते हैं, कि तुम उनको प्यार करती हो ?"

"नहीं, वे नहीं जानते।"

"उनके साथ बातचीत कर उनको यह मालूम क्यों नहीं कराया ?"

"बातचीत करना तो दूर रहा,—उन्होंने मुझको एकबार भी देखा नहीं, फिर भी मैंने उनको देखा है।"

"किस प्रकार देखा है !"

"एक दिन मैं डाकुओंके हाथ पड़ी। उसी समय उन्होंने आकर डाकुओंके हाथसे मेरे प्राण,—इहकाल और परकालकी रक्षा की। उसी दिन मैंने उनको प्रथम बार देखा। किन्तु मैंने उनको देखकर लक्ष्य किया, कि उन्होंने मेरे मुंहकी ओर एक बार भी दृष्टिपात नहीं किया।

"पिताने प्रत्युपकार स्वरूप उन्हें बहुत ऐश्वर्य देना चाहा, किन्तु उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उसकी उपेक्षा की। वीरत्व और महत्वका समावेश देखकर मेरा हृदय मुग्ध हो गया। मैंने उनके चरणोंमें सब उत्सर्ग कर दिया।

"इसीके कुछ दिन पश्चात् सुना,—उनको एक विशाल जागीर मिली है; और यह भी सुना कि एक देवीके समान रमणी उनकी सहधर्मिणी हुई है। देव-देवीका मिलन हुआ।

"प्रथम मेरा लालसानल प्रज्वलित हो उठा, मैं चित्तको दमन न कर सकी। किन्तु एक शुभ दिवसमें, शुभ मुहूर्तमें—इसी सहचरीने अमिय झंकारवत् उपदेश वाक्यसे—वह लालसानल निर्वापित कर दिया। मैंने संकल्प किया, उन्हींकी मूर्ति-पूजा कर जीवन यापन करूंगी, उन्हींके कार्यके लिए, उनके लिए यदि इन प्राणोंको भी देनेकी आवश्यकता पड़ेगी, तो दूंगी। और यह भी संकल्प किया—उस देवताकी प्रीतिके लिए, तृप्तिके लिए, अपने सब अलङ्कार रत्न उसी सौभाग्यशालिनी रमणीके पैरोंमें—उपहार देकर आशीर्वाद ग्रहण करूंगी।

"हे मेरी गरीयसी, महीयसी भगिनी—अभागी भगिनीका यह

दीन उपहार ग्रहण कर आशीर्वाद दो,—जिससे अपने देवताके ही कार्यके लिए ये प्राण दे सकूं, जिससे अन्तमें उनकी दयाका एक बिन्दु प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकूं।"

कुछ क्षण अत्यन्त विस्मयसे चुप रह कर रानीने कम्पित स्वरसे कहा, "सतीकी मनोभिलाषा कभी अपूर्ण नहीं रह सकती। तुम धन्य हो,—तुम मेरी छोटी बहन नहीं, मैं ही तुम्हारी कनिष्ठा हूं। सतीत्वकी आदर्शरूपिणी भगिनी, तुम आशीर्वाद दो, जिसमें स्वामीके दोनों चरणोंकी पूजा कर, स्वामीके चरणोंमें माथा रख कर, एक प्राण, एक ध्यान, एक ज्ञान, एक लक्ष्यसे धर्मका मङ्गल शङ्ख सुनती हुई, जीवनका साफल्य प्राप्त कर, सागरके उस पार जा सकूं!"

नवाँ परिच्छेद।

आज पठानोंके लिए बड़ा आनन्दका दिन है। कल प्रथम दिनके युद्धमें मुगलोंकी विजय हुई थी, आज द्वितीय दिनके युद्धमें पठान विजयी हुए। इसीलिए, आज पठानोंके लिए बड़ा आनन्दका दिन है।

सन्ध्याके समय पांच हजार घुड-सवार सेनामें से केवल

पचास एकक्रान्त अश्वारोही सैनिकोंके साथ राजा अमरप्रसाद् जंगली मार्गसे शिविरको वापस आ रहे थे।

किनारेके स्थान स्थानपर बहुत वृक्षोंके एकत्रित होनेसे एक एक क्षुद्र अरण्य की सृष्टि हो रही थी। उस समय आकाशमें चन्द्रमा भी उदय हो गया था। मृदु समीरसे वृक्षोंके पत्ते हिल डुल कर नाच रहे थे, और रसिक-प्रेमी चन्द्र-किरण - जिस प्रकार कुल-वधुएँ घूंघटसे समय समय पर झांक कर सब देख लेती हैं,—अथवा जिस प्रकार घूंघटके अन्तरालसे हास्य रञ्जित अधरोंके मध्यमें हेमकान्तिमय दशन-पंक्तियाँ तारोंके समान प्रकट होती है, उसी प्रकार उस अन्धकारमय अरण्यमें समय समय पर चन्द्र-किरण चमककर विमल हास्यके साथ प्रकट होती थीं।

ऐसेही एक वृक्षोंके वन अथवा अरण्यके निकट राजा उपस्थित हुए—उनकी सेना पीछे दूर रह गयी। केवल दो चार रक्षकोंके साथ राजा आगे बढ़ आये। सहसा अरण्यसे प्रायः एक सौसे भी अधिक सशस्त्र पठान—बाहर निकल कर राजा और उनके साथियोंपर आक्रमण करने लगे।

राजा दुर्बल क्लान्त हो रहे थे—तथापि प्रबल वेगके साथ उन्होंने पठान सेनाके ऊपर आक्रमण किया। लगातार शस्त्राघातसे राजाकी तलवार टूट गई,साथी मारे गये,यह सुयोग पाकर एक पठान कोषोन्मुक्त तलवार हाथमें लेकर, राजाको मारनेकी अभिलाषासे अग्रसर हुआ,—किन्तु राजाके निकट आनेके

पहिले ही, राजाने उसी तलवारके टुकड़ेसे पठानके ललाटको लक्ष्य कर जोरसे मारा ; लक्ष्य अव्यर्थ हुआ और पठानका ललाट शोणितसे तर हो गया,—पठान कांपता हुआ भूमिमें गिर पड़ा। पुनः दूसरा पठान अग्रसर हुआ—राजाने उस समय धनुष ग्रहण कर तीर छोड़ा, इस पठानने भी पहिले पठानके समान भूमिका आश्रय लिया। पुनः और एक पठान अग्रसर हुआ। राजाने तीर निकालनेके लिए तूणीरमें हाथ डाला तो देखा कि तीर नहीं हैं। राजाने धनुषकी सहायतासे पठानके साथ युद्ध किया,—किन्तु धनुष कट गया,—राजाने तब पठानके शिरको लक्ष्य कर जोरसे तूणीर मारा, पठानका शिर फट गया और रुधिरकी धारा बहने लगी—पठान अल्लाहका नाम स्मरणकर धराशायी हुआ। पुनः एक और पठान अग्रसर हुआ। राजाने कमरसे छुरी निकाल कर पठानके छातीमें मारी,—छुरीने पठानकी छाती छेद दी। आर्तनाद करते हुए उस पठानने भी पूर्व पठानोंका पथानुसरण किया। पुनः एक और पठान अग्रसर हुआ—इस समय राजाके पास और कुछ नहीं रहा। राजाने उस समय चित्कार कर कहा,—"मर्त्यलोकमें क्या कहीं कोई जीवित है, आओ, निःशस्त्र, शत्रु परिवेष्टित राजपूतके हाथमें एक शस्त्र दे कर, उसके गौरवकी रक्षा करो।"

"राजा लीजिए, यह शस्त्र है।"

अत्यन्त विस्मयके साथ राजाने पीछे फिर कर देखा, शस्त्र

हाथमें लेकर एक अत्यन्त सुन्दर बालक खड़ा है। राजाके पास उस समय क्षणभरका भी समय नहीं था, बिना कुछ कहे उन्होंने बालकके हाथसे तलवार लेकर शार्दूलके समान पठानोंके ऊपर आक्रमण किया। बालक भी सुनील जलदके मध्यमें बिजलीके समान अन्तर्द्धान हो गया।

उस पठानने भी भू-चुम्बन किया—और एक पठान अग्रसर हुआ, एक गया तो दूसरा आया—एक व्याधि दूर हुई तो दूसरी आई। एक विपद दूर हुई तो दूसरी विपद्का आगमन हुआ। एक दिन एक रात्रि गई, तो दूसरा दिन दूसरी रात्रि आई। इसी प्रकार एकके पश्चात् एक पठान गया और आया।

रणक्लान्त राजाको तलवार पकड़नेकी शक्तिका भी लोप होने लगा।

निराश कातर हृदयसे उन्होंने भगवानको पुकारा। सहसा कुछ दूरसे बहुतसे घोड़ोंकी टाप सुनाई दी। भयके साथ सबने फिरकर देखा कि अश्वारोही सेनाका एकदल बड़ी तेजीसे आ रहा है। निकट आकर सबने पहिचाना, कि यह राजपूत सैन्य है। भयभीत होकर पठानोंने शीघ्र अरण्यके मध्यमें आश्रय ग्रहण किया। राजपूत सेना उनको लक्ष्य कर, जङ्गलको घेर, चन्द्रमाके प्रकाशके सहारे अरण्यमें तीर चलाने लगी। अनेक पठानोंकी भयावह चित्कारसे समस्त जङ्गल कम्पायमान होने लगा। यह देखकर राजाने कहा, "सैनिकगण! प्राणोंके भयसे भागे हुए सैनिकोंका वध करना राजपूतोंके लिये गौरव-

युक्त नहीं है,—केवल कलङ्कका भागी होना है, सब शान्त होओ।"

राजाके आदेशसे सैनिक लौट आये—पीछे आती हुई सेना भी नव सैन्यदलके साथ मिल गई। राजाने घोड़ा शिविरकी ओर बढ़ाया, पीछे पीछे सेना चलने लगी।

मार्गमें राजाने पुकारा, "दीपन।"

सरदार दीपन राजाके समीप उपस्थित हुआ। राजाने पूछा, "तुम किसकी आज्ञासे किधरको जा रहे थे?"

दीपनने दीप्त दृढ़ कण्ठसे कहा, "आपकी आज्ञाके अतिरिक्त अन्य किसीकी आज्ञा पालन करना मैं नहीं जानता।"

"तब यहां कैसे आये?"

"एक बालकने कहा, आप इसी स्थानमें सङ्कटमें हैं, इसीलिए यहां आया था।"

"एक बालकने कहा था! हां!" राजाके मुंहपर चिन्ताके चिह्न दिखाई दिये, राजा सोचने लगे, "यह कौन मेरा हितचिन्तक है।"

दसवाँ परिच्छेद।

दूसरे दिन प्रातःकाल पुनः मुगल पठानोंका जीवन-मरण-संग्राम प्रारम्भ हुआ। कलके युद्धमें हारने पर भी पठानोंकी

अपेक्षा मुगलोंकी सेना अब भी दूना है। उत्साह भी दूना है, उसी बढ़े हुए उत्साहसे मुगल पठानोंके ऊपर तूफानके समान टूट पड़े। इस आक्रमणसे पठानोंकी छाती दहल गई।

राजा अमरप्रसादने युद्धक्षेत्रमें आकर चारों ओर निरीक्षण किया किन्तु रुस्तमखांको कहीं भी नहीं देखा। अस्वस्थता अथवा अन्य किसी कारणसे रुस्तम आज रणक्षेत्रमें नहीं आये होंगे, यह स्थिर कर अमरप्रसादने राजा टोडरमलकी सहायतासे नवाब दाऊदखांके ऊपर आक्रमण किया—युद्ध होने लगा, प्रबल वेग और भीषण भावसे युद्ध होने लगा। मनुष्यकी निष्ठुरताकी वीभत्स्य मूर्ति प्रकट हुई। विश्वके कोलाहलको अतल सागरमें डुबाकर आर्तोंका विकट चित्कार होने लगा। शोणितका शोणितसे खेल,—आत्माकी आत्मासे लीला। रणस्थल अति भीषण भयावह हो उठा।

सहसा राजा अमरप्रसादने कुछ दूरपर सेनासहित रुस्तम खांको देखा। राजा अपनी सेनासहित रुस्तमखांकी ओर अग्रसर हुए।

किन्तु रुस्तमखां राजाके आक्रमणके लिये अग्रसर न होकर क्रमशः पीछे हट, नदीके तट पर आया। यह देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा रुस्तमखांके इस अद्भुत कार्यका कुछ भी अर्थ न समझ सके। वे अग्रसर होने लगे।

रुस्तमके सम्मुख उपस्थित होकर उच्चकण्ठसे राजाने कहा, "जान पड़ता है रुस्तमखांके हृदयमें शंका उत्पन्न हो गई है।

शस्त्रोंकी तीक्ष्णता सहन करनेकी शक्ति नहीं रही—इसलिए भागनेका सुयोग खोजनेकी इच्छासे, युद्धस्थल त्याग कर इस नदीके तीर पर आये हैं ?"

"शंका शब्द पठानोंके कोषमें नहीं है काफिर ! तुम्हारी और तुम्हारी काफिर सेनाके मृतदेहके स्तूपसे नदीके ऊपर सेतु बनानेके लिए यहाँ आया हूँ । लो, आत्मरक्षाके लिए प्रस्तुत हो जाओ, विलम्ब मत करो,—वह देखो, सूर्य अभी पश्चिममें अस्त हो जायेगा । विलम्ब होनेसे मेरी आशा पूर्ण नहीं होगी ।"

"सैकड़ों जन्ममें भी तुम्हारी आशा पूर्ण नहीं होगी रुस्तम ! यह सूर्य अस्त होगा—इसीके साथ साथ तुम्हारा सौभाग्य सूर्य भी इस नदीके गर्भमें अस्त हो जायगा । लो, अब राजपूतके आक्रमणके लिए तत्पर हो जाओ ।"

राजपूत और पठानोंके बीच भीषण युद्ध होने लगा । रक्त-पिपासु दानवके समान दोनों पक्ष युद्धमें जूझ गये ।

बहुत समय तक युद्ध होता रहा,—बहुतसी घुड़सवार और पैदल सेना सदाके लिये रणक्षेत्रमें सो गई । गाढ़े शोणितके प्रवाहसे नदीका जल लाल हो गया । ऐसे नारकीय पैशाचिक दृश्यसे व्यथित होकर सूर्यदेवने आकाशकी गोदमें मुंह छिपा लिया ।

राजाकी तलवारके भीषण आघातको व्यर्थ कर रुस्तमने कहा, "काफिर ! देखता हूं तुम्हारे ऊपर भगवानकी असीम दया

है ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हारी मृत्यु वह नहीं चाहता—यह देखो सूर्य अस्त हो गया है ; युद्ध बन्द करो ।"

"आक्रमण रोककर राजाने कहा, तुम्हारे ही ऊपर भगवान की असीम करुणा दिखाई देती है,—इसीलिये आज राजपूतके आक्रमणसे बच गये हो ।"

"तुम्हारा यह अभिमान कल नहीं रहेगा ;—कल तुम्हारा यह दम्भ भयभीत होकर मेरे पैरों तले लोट पड़ेगा । यह कहकर रुस्तमखांने शीघ्रतासे घोड़ा भगाया,—साथमें केवल थोड़े अश्वारोही चले । अन्यान्य सैनिक धीरे धीरे शिविरकी ओर अग्रसर होने लगे । देखते देखते रुस्तमखां अदृश्य हो गया ।

रुस्तमखांके इस प्रकार आकस्मिक अन्तर्द्धानसे राजाको आश्चर्य हुआ । उन्होंने अपनी सेनाको शिविरकी ओर लौटनेकी आज्ञा दी । स्वयं भी सबके पीछे धीरे धीरे जाने लगे ।

रुस्तमका कार्य ही राजाके हृदयमें बारम्बार उदय होने लगा । प्रथम युद्धमें आनेमें ही विलम्ब,—इसके पश्चात् रण-स्थलमें प्रकट होना,—नदी तटपर आना,—आकस्मिक प्रस्थान,—इन सब बातोंपर विचार करते हुए राजा जा रहे थे ।

सहसा थोड़ी ही दूरपर रमणीके कण्ठसे निकली हुई अति करुण आर्तध्वनि सुन पड़ी । राजाका चिन्तालोल रुक गया ।

पहिले भी एकदिन एक बालिकाने धर्म-रक्षार्थ इसी भावसे—ऐसेही आर्तनाद किया था,—और आज भी यदि वही हो—कोई भी रमणी क्यों न हो,—इस कल्पनासे राजाको वेग

रोमाञ्चित हो गई,—और अधिक चिन्ता न कर, राजाने जिस ओरसे चित्कार सुनाई दी, उसी ओरको घोड़ा तेजीसे भगाया।

कुछ दूर आकर, पुनः आर्तनाद सुनाई दिया—किन्तु और भी दूर पर। राजाने और भी तेजीसे घोड़ा भगाया,—फिर भी आर्तनादका शब्द सुनाई दिया। राजा जितना ही आगे बढ़े; आर्तनाद भी अधिकाधिक दूरसे सुन पड़ने लगा। वह आर्तनाद भी मानो मृग मरीचिका हो गया।

आश्चर्य-चकित होकर राजाने सोचा किसी रमणीको कोई डाकू अपहरण कर घोड़ेपर बिठा कर ले जा रहा है। राजाने उस समय ठीक ठीक दिशाकी ओर ध्यान न देकर पवन गतिसे घोड़ा दौड़ाया। उस समय चन्द्रमाकी श्वेत किरणें फैल रहीं थीं। उसी चन्द्रके प्रकाशमें राजाने विस्मयके साथ देखा कि थोड़ी ही दूरपर श्वेत प्रकाशके समान श्वेत वस्त्र पहिने हुई, एक रमणी हांफती हुई पड़ी है। यह देख कर राजाने घोड़ेको रोका। सहसा घोड़ा विकट शब्द कर उछल पड़ा। घोड़ेके अकस्मात उछलनेसे राजा भूमि पर गिर पड़े,—घोड़ा भी कांपता हुआ जमीन पर गिर पड़ा। सौभाग्यसे घासके ऊपर गिरनेके कारण राजाको सामान्य चोट लगी। उठ कर खड़े होते ही राजाके दोनों हाथ पीछेसे किसीने जोरसे पकड़ लिये। आश्चर्यचकित हो कर, पीछे फिर कर, राजाने देखा, कि दो पठानोंने उनके हाथ पकड़ रखे हैं। उनके पीछे नङ्गी तलवार हाथमें लिये और भी कई पठान हैं। क्षण भरमें

पठान रुस्तमको घेर कर खड़े हो गये। दो पठानोंने राजाके हाथ और पैरोंमें लोहेकी शृङ्खला पहना दी।

क्रोध भरे स्वरसे राजाने कहा,—"तुम कापुरुष कौन हो? पीछेसे बरछा मारकर मेरा घोड़ा मार डाला—कापुरुष तस्करके समान मुझको शस्त्र ग्रहण करनेका अवसर भी नहीं दिया, ऐसी अवस्थामें मुझको बन्दी किया,—तुम कापुरुष कौन हो?"

पीछेसे बड़े जोरके साथ हंसकर एक पठानने कहा—"यह कापुरुषता नहीं—रण-कौशल है। तुम मूर्ख हो, इसीलिए एक रमणीका चित्कार सुनकर उसके पीछे दौड़े।"

"यह मूर्खता नहीं, सरलता है। रुस्तम! राजपूत छल कपट नहीं जानते,—छल कपट उन्होंने सीखा ही नहीं है! यह वाक्य, यह नीच कौशल,—यह घृणित कापुरुषोचित व्यवहार तुमको ही शोभा देता है! तुम पठानकुलके कलङ्क हो!"

"मैं पठान कुलका गौरव हूँ। काफिरोंका वध करना ही मुसलमानोंका धर्म है। छल, बल, कौशलसे जिस प्रकार हो सके —काफिरोंकी हत्यासे स्वर्ग प्राप्त होता है। परन्तु अभी तुम्हारा वध न कर, तुमको बन्दी करता हूं। तुम्हें एकदम मार डालने की मेरी इच्छा नहीं है,—धीरे धीरे, क्षण क्षणमें,—यातना देकर तुमको मारूंगा। उस भीषण मृत्युकी कल्पना तक भी नहीं हो सकती,—इसीलिए तुमको इस समय बन्दी किया है। सैनिक-गण, बिना विलम्ब किये बन्दीको घोड़ेकी पीठ पर डालकर ले आओ।"

रुस्तम घोड़ा दौड़ा कर चला गया। दो सैनिकोंने राजा को घोड़े की पीठ पर बिठा दिया,—एक पठान सैनिकने उसी घोड़ेपर सवार होकर घोड़ा बढ़ाया और उस घोड़ेको घेर कर अन्य सैनिकोंने भी घोड़े दौड़ाये।

राजाकी खोजमें राजपूत सेना जब घटनास्थल पर उपस्थित हुई—उस समय रुस्तमकी सेना अदृश्य हो गई थी।

सैनिकोंको इधर उधर, कहीं भी राजा न दिखाई दिये,—केवल राजाका मरा हुआ घोड़ा दिखाई दिया।

मृत घोड़ेको देख कर उन्होंने सोचा,—राजा शत्रुओंके हाथ निश्चय बन्दी हुए हैं। निराश-व्यथित हृदयसे वे उस समय शिविरको लौट गये।

ग्यारहवां परिच्छेद।

पठानोंके शिविर हैं। असंख्य श्रेणीवद्ध शिविर निश्चल भावसे खड़े हैं। मानो मुगलोंके भयसे स्तब्ध और त्रस्त हो रहे हैं; इसीलिए शब्दहीन और उत्साहहीन हो रहे हैं। प्रत्येक शिविरमें सैनिक हैं; किन्तु गूंगेके सदृश सब चुप हैं,—मानो सब प्राणहीन—तेजहीन हैं।

मध्यस्थलमें पठान सूबे नवाब दाऊदखांका सुविशाल शिविर है। उसके शिखरपर पठानोंका गौरव—पठान स्वाधीनताका चिह्न—अर्द्ध चन्द्राङ्कित लाल पताका फहरा रही है। किन्तु सबसे ऊंचे—नवाब-शिविर-शीर्षमें स्थान पाकर भी उसका वह गर्वमय पत् पत् शब्द नहीं है—चंचल नृत्य नहीं है—तरङ्गयुक्त हिल्लोल नहीं है। वह शिविर दीन कङ्कालके समान खड़ा है। ऐसा प्रतीत होता है, कि उसका उन्नत मस्तक, मुगलोंके पैरों तले कुचला गया है, धूलमें गिरनेकी आशङ्कासे म्लान हो रहा है,—चिन्ताके भारसे देह दीन और शीर्ण हो रही है।

रात्रिका प्रथम प्रहर है। आकाशमें चांद नहीं है,—पृथिवीमें प्रकाश नहीं है, सर्वत्र अन्धकार छा रहा है। कोमल,—हास्यानन—प्रेमिक चन्द्र, रणक्षेत्रका वीभत्स दृश्य देख कर पेड़ोंकी ओटमें मूच्छित हो रहा है—इसीलिए ऐसा प्रतीत होता है कि वह आकाशमें उदय ही नहीं हुआ, अन्धकारकी गोदमें—मृतदेहोंकी पर्वत श्रेणीमें मानो उसे छिपा रखा है।

रात्रिका प्रथम प्रहर है, फिर भी संसार निस्तब्ध है। निशाचरोंका कलरव भी नहीं है। गृहस्थोंके किवाड़ बन्द हैं। मानो महा आतङ्कसे—सबके हृदय कांप रहे हैं, कण्ठ शुष्क हो रहे हैं, बोलना बन्द है।

रात्रिका प्रथम प्रहर है। युद्धके बाजोंकी आवाज़, मृत्यु-पथ-गामियोंका आर्तनाद, वीरोंका गर्जन, झनाझन शस्त्रोंका वर्षण, मृत्युकी लीला, शैतानके सब खेल बन्द हो गये हैं।

इसीके साथ साथ विश्वका समस्त कोलाहल, सकल प्रकारके शब्द भी थम गये हैं! संसार विराट निस्तब्धताके साम्राज्यमे निमग्न है। एक शब्द मात्रसे सुप्त-शमन जाग्रत होता है—चिरनिद्रामें सोये हुए सैनिकोंकी निद्राभङ्ग होती है—इसी शङ्कासे ही मानो समस्त शब्दराशिने एकीभूत होकर एक दूसरेका गला दबा रखा है।

प्रत्येक शिविरमें रणक्लान्त सैनिक सो रहे हैं—कोई पलंग पर, कोई शय्यामें—कोई भूमिपर सोये हुए हैं। किसीकी तकिया अपना ही हाथ है, किसीकी पगड़ी, किसीकी तकिया कपड़ोंके पुलिन्दे हैं। अवसाद-ग्रस्त सैनिक जो जहां पर, जिस भावसे पड़ा है,—उसी स्थानमें उसी भावसे निद्रित है। बीच बीचमें केवल दो एक प्रहरी सङ्गीन लिये पहरे पर नियुक्त हैं।

नवाबका शिविर जैसा सुविशाल है—वैसा ही मनोरम; सुशोभित और विविध प्रकारकी वस्तुओंसे सुसज्जित भी है।

एक विशाल कमरेमें नवाब दाऊदखां बैठे हुए हैं। कमरेके रमणीय मनोहर कपड़े, एकदम नयन-मनोहर न होनेपर भी शोभा और सम्पदासे हीन नहीं हैं। किमखावके बहुमूल्य आसनोंमें अस्त्र शस्त्र विभूषित हैं। घोड़ोंकी पीठ पर बैठे हुए पठान वीरोंके चित्र, कल्पित वीर-मूर्तिके पत्थर प्रतिमूर्तिसे उज्वल और सुसज्जित हैं। प्रकाशकी मालासे कमरेने एक अपूर्व गाम्भीर्यमय शोभा धारण कर रखी है।

नवाबके कमरेके किवाड़ खुले हुए हैं। उन्हीं उन्मुक्त

किवाड़ोंके मार्गसे प्रकाशकी किरण पड़नेके कारण सामनेके पत्थरोंका कुछ अंश स्वर्णके वर्णका हो रहा है। शिविरके सैकड़ों टिमटिमाते हुए दीपकोंके मध्यमें उस एक कमरेका उज्वल प्रकाश, असंख्य तारोंके मध्यमें चन्द्रमाके समान मालूम हो रहा है।

एक अत्यन्त मूल्यवान, उज्वल, कोमल आसनके ऊपर बंगाल, बिहार और उड़ीसाके अधिपति नवाब दाऊदखां विराजमान हैं।

नवाब गम्भीर और चिन्तामग्न हैं। पत्थरकी मूर्तिके समान देह निश्चल है। कृष्ण मेघके समान उनका चेहरा कालिमाच्छन्न है। देखने से ऐसा प्रतीत होता है, कि उस चेहरे पर कभी हास्य-रेखा अङ्कित नहीं हुई। गम्भीर, अन्त-हीन—अन्धकाराकुल हृदयकी प्रतिमूर्ति लेकर वह चेहरा जलद्-घन मेघखण्डके समान प्रकट हो रहा है।

वायुकी गतिसे जिस प्रकार तरङ्गकी गतिमें परिवर्तन होता है—उसी प्रकार चिन्ताकी गतिसे नवाबके चेहरेके भावमें भी परिवर्तन हो रहे हैं।

क्षुद्र तरल मेघमालाको वायु जिस प्रकार एक जगहसे, दूसरी जगह और पुनः उस जगहसे भी उड़ा देती है, नवाबका हृदय भी उसी प्रकार चिन्तासे डांवाडोल हो रहा था। सदा यही भय था—क्या होगा, सदा यही चिन्ता थी—क्या होगा, सदा यही आशङ्का थी—क्या होगा।

"सौभाग्य-सूर्य पठानोंके ललाटसे च्युत होकर विराट हाहाकारके साथ सागर-गर्भमें लीन होगा, अथवा संसारको प्रकाशित और पुलकित कर उदय होगा ? उत्थान होगा या पतन ? जीवनका प्रकाश होगा, अथवा मृत्युका अन्धकार ! अन्धकार, गम्भीर सूचीभेद्य अन्धकार है। इस विपुल अन्धकारको भेद कर प्रकाशमय राज्य प्राप्त करनेमें समर्थ होता, यदि राजपूत मेरे सहायक होते। यह दृष्टि, यह बुद्धि प्रथम क्यों नहीं आई ? ऐसा होता—ऐसा होता तो मालूम होता है, पठानोंका गौरव भारतकी छाती पर सदा अङ्कित रहता। भूल—भूल, महाभूल, अन्धकारमें इतने दिनों तक पड़ा रहा। इतने दिनों तक धर्म और पुण्यकी मेद-मज्जासे गठित हिन्दुओंको नहीं पहिचान सका। केवल उसी एक पुण्य दिवसके प्रभातमें एक बालिकाके दृष्टान्तसे जो समझा हूं, उससे और अधिक समझनेकी आवश्यकता नहीं, समझना भी नहीं चाहता। जो जाति ऐसी बाला उत्पन्न कर सकती है, वह जाति ईश्वरकी दयासे परिपुष्ट है, स्वर्गके आवरणसे उसका हृदय ढका हुआ है। नरक उसको देख कर दूर खिसक जाता है। संसारका आदर्श-मनुष्योंका आदर्श यही हिन्दू जाति है। धर्म, पुण्य, राज-सेवा, आतिथ्यमें इस जातिकी समकक्ष जाति संसारमें और कोई नहीं है। धर्मके भेदभावको त्याग कर यह जाति एकवार यदि भाई कहकर, गले मिल कर, स्वच्छ हृदयसे एकत्रित हो कर खड़ी हो जाय—एकवार यदि जातिगत ईर्षा-

द्वेष-क्रोध भूल कर एक स्वर, एक कण्ठ, एक वाक्यसे 'जयति जय भारत भूमि' कहकर चिल्लावे, तो उस ध्वनिसे यह विश्व ब्रह्माण्ड भी कांप उठेगा। किन्तु ऐसा होगा नहीं, हिन्दुओंका उत्थान असम्भव है। हिन्दुओंमें सहस्रों गुण होते हुए भी, उनमें ऐक्य नहीं है, यही एकता यदि उनमें होती, तो आज अकबर बीस करोड़ लोगोंका भाग्य-विधाता होकर भारतके सिंहासनपर कदापि बैठ नहीं सकता। मेरे ही हाथसे बहुत दिन पहिले ही बंगालका राजदण्ड छूट जाता! हिन्दुओंको प्रभुत शक्ति जिसको मैं नहीं समझ सका, अति तीव्र बुद्धि अकबरशाहने उसको समझा, इसलिए राजा टोडरमल और मानसिंह सरीखे दो स्तम्भोंको स्नेहकी शृङ्खलासे उसने आबद्ध किया है। इन्हीं दोनों हिन्दू वीरोंकी शक्तिसे ही, मुगलोंका सिंहासन दृढ़ और प्रतिष्ठित है। इन दो वीरोंकी सहायतासे यदि अकबर वञ्चित रहता तो आज पठानोंकी शक्तिके चापसे उसके स्वर्ण सिंहासनके टुकड़े टुकड़े हो जाते।"

इसी समय एक पहरेदारने भयके साथ कमरेमें प्रवेश किया और भूमि स्पर्श कर अभिवादन किया।

ऐसे असमयमें सहसा पहरेदारके आगमनसे विरक्त हो कर नवाबने रूखे स्वरसे पूछा, "क्या चाहता है, बद्तमीज़!"

पुनः अभिवादन कर शुष्क कण्ठसे पहरेदारने कहा, "जहांपनाहके साथ साक्षात करनेके लिए एक हिन्दू नारी अपेक्षा कर रही है। आपकी आज्ञा"—

पहरेदारका वाक्य समाप्त होनेके पूर्वही अत्यन्त ... साथ नवाबने कहा, "हिन्दू रमणी! ऐसी गम्भीर निस्तब्ध रात्रिमें हिन्दू नारी! उसके साथ कितने रक्षक हैं?"

"एक भी रक्षक नहीं है, मेहरबान।"

"तो वह अवश्य पागल है। ऐसी रात्रिमें, इस सशस्त्र प्रहरी वेष्टित सैन्य-सागरके बीच ऐसी कोई दुःस्साहसिनी रमणी नहीं हो सकती, जो अकेले बंगालके अधीश्वरके साथ साक्षात करनेकी अभिलाषासे आवे।"

"वास्तवमें वह पगली है नवाब।" नवाबने औत्सुक्यसे देखा कि किवाड़ोंके पास एक ज्योतिर्मयी रमणी मूर्ति है। शीघ्र आसन परित्याग कर अभिवादन करते हुए नवाबने कहा, "यह क्या जननी, तुम हो! तुम इस स्थानमें, इस समय क्यों आई हो माता? आज्ञा देने ही से यह सन्तान आपके ही निकट आ जाता।"

"नवाब! आज मैं तुम्हारे निकट जननी रूपसे नहीं—भिखारिणी रूपसे आई हूं।"

"तुम भिखारिणी—आश्चर्य! तुम वङ्गालके अधीश्वरकी जननी—राजनन्दिनी, राजरानी हो! तुम भिखारिणी! यह क्या रहस्य है माता!"

"यह रहस्य नहीं नवाब, यह सत्य, ध्रुव और प्रत्यक्ष है। आज वास्तवमें मैं तुम्हारे निकट भिखारिणी हूं। एक भिक्षा, केवल एक भिक्षा, क्या दोगे? इस दीन भिखारिणीको क्या एक भिक्षा दोगे नवाब!"

"ये प्राण तुम्हारे हैं, राज्य तुम्हारा है, तुमको क्या भिक्षा दे सकता हूं माता ? तुम्हारी ही असीम करुणासे आज भी मैं जीवित हूं, आज भी मैं बंगालका शासन कर रहा हूँ—तुम्हारे लिए मेरे पास अदेय क्या है माता ? कहो जननी, आज्ञा दो—तुमको क्या चाहिये !"

"दोगे,—जो चाहूँगी दोगे ?"

"सन्तानके प्रति आज इतना अविश्वास क्यों है माता ! युद्ध-व्यवसायी, विदेशी, विधर्मी पठान होते हुए भी मैं अकृतज्ञ पशु अथवा शैतान नहीं हूं। शपथपूर्वक कहता हूं माता, तुम जो चाहोगी, बिना कुछ कहे मैं वही दूंगा। यदि मेरा मस्तक अथवा शिरहीन देह चाहो, अपने ही हाथसे वह भी तुमको उपहार दूंगा। यदि हृद्‌पिण्ड, देहका शोणित चाहो, अम्लान मुखमण्डलसे वही दूंगा। यदि बङ्गालका शासन-दण्ड चाहती हो,—मैं चुपचाप बंगालका सिंहासन छोड़ दूंगा,—अभी कहो माता, क्या चाहती हो !"

"मैं अपने स्वामी राजा अमरप्रसादकी मुक्ति-भिक्षा चाहती हूँ।"

"यह क्या ! तुम्हारे स्वामी क्या पठान शिविरमें बन्दी हैं ?"

"हां—नवाब।"

"मैं तो कुछ भी नहीं जानता। मालूम होता है, सेनापति रुस्तमने उनको बन्दी किया है। राजाके प्रति उसका बड़ा क्रोध है, राजाको बन्दी करनेके लिए वह सदा सचेष्ट रहता है।

एक दिन अप्रस्तुत राजाको मारनेके लिए उद्यत भी हुआ था ; किन्तु मैंने वहां पहुंच कर उनको बचा लिया। तुम निश्चिन्त होकर घर लौट आओ, माता,—मैं इसी क्षण अनुसन्धान कर—राजाको मुक्त कर देता हूँ। और सुनो माता—नवाब दाऊदखांके हाथसे तुम्हारे स्वामीका कुछ भी अमङ्गल नहीं होगा और न होने दूंगा।"

इसके पश्चात् नवाबने प्रहरीको लक्ष्य कर कहा,—आओ प्रहरी! सम्मानके साथ इस नारीको इसके गन्तव्य स्थानमें पहुँचा दो। सम्मानमें किसीप्रकारकी त्रुटि न हो,—याद रखो, ये मेरी जननी हैं।"

अभिवादन कर पहरेदार अग्रसर हुआ। कृतज्ञ हृदयसे महत्वमुग्धा रानी ऊर्मिला बालाने कहा,—"नवाब, नवाब, तुम उपमाके वहिर्भूत हो,—तुम्हारे चरित्रकी कल्पना भी नहीं हो सकती। तुम धन्य हो, तुमको सन्तान रूपसे पाकर मैं भी धन्य हूँ। तुम केवल पठान-अधिपति नहीं, तुम जातिके गौरव, पठानोंकी कीर्ति-किरीट हो। तुम्हारा ऋण, तुम्हारी उदारता,—कभी नहीं भूलूंगी। यह उज्वल आदर्श भूलने योग्य है भी नहीं। अब जाती हूँ पुत्र। हां—एक बात और कहनी है,—राजा किसी तरह जानने न पावें कि मैं ही उनकी मुक्ति का कारण हूँ, अन्यथा वीरत्वाभिमानी तेजस्वी राजा, कदापि मुक्ति-भिक्षा न लेंगे। इसीलिए अनुरोध करती हूँ—उनकी मुक्तिका रहस्य अप्रकाशित रहे।"

रानी धीरे धीरे अग्रसर होने लगीं। अभिवादन करता हुआ प्रहरी भी आगे चलने लगा।

रानी जब कमरेसे बाहर चली गई, नवाबने उच्च कण्ठसे पुकारा,—"कोई है ?"

एक पहरेदारने कमरेमें आकर अभिवादन किया। उसकी ओर दृष्टिपात न कर नवाबने कहा,—"जल्दी रुस्तमखांको बुलाओ। जाओ—"

पहरेदार चुपचाप चला गया।

चिन्तायुक्त—अवसादग्रस्त देहभार नवाब और सहन न कर सके ;—कोमल आसनके ऊपर लेट गये।

इसी समय रुस्तमखां कमरेमें आकर नवाबके सम्मुख खड़ा हुआ।

उसको देख कर नवाबने कहा, "रुस्तम !"

"शाहनशाह !"

"राजा अमरप्रसाद बन्दी हुए हैं ?

"हां जहांपनाह !"

"उनको किसने बन्दी किया है ?"

"मैं'ने।"

"क्या युद्धक्षेत्रमें बन्दी किया है ?"

"केवल युद्धक्षेत्रमें ही नहीं—सशस्त्र—"

"उत्तम,—उनको इसी क्षण सम्मानके साथ मुक्त कर दो।"

"यह क्या ! राजा अमरप्रसाद हमारे महाशत्रु—"

"यह जानता हूँ ।"

"उनको मुक्त करना अपने लिए महान विपत्ति पैदा करना है ।"

"यह भी जानता हूं ।"

"विपक्षमें राजा टोडरमल और अमरप्रसाद बड़े रण विशारद हैं—इसलिए राजा अमरप्रसादको मुक्त कर विजय प्राप्त करनेकी आशा त्याग देनी चाहिए ।"

"यह भी जानता हूँ । जानता हूँ कि अपने ही हाथसे अपने नेत्र निकाल रहा हूँ, अपने हृत्पिण्डको निकालनेकी आशा दे रहा हूँ—अपने एक अङ्गकी हानि करनेकी व्यवस्था कर रहा हूँ । जानता हूँ राजा अमरप्रसाद महारथी हैं, पठानोंके महाशत्रु हैं—उनको मुक्त करनेसे पठानोंकी हार अनिवार्य है । फिर भी उनको मुक्त करता हूं ।"

"इसका अर्थ !"

"इसका अर्थ ! इसका अर्थ तुम नहीं समझ सकोगे रुस्तम ।"

इस समय जाओ—राज-सम्मानके साथ उनको मुक्त कर दो । सावधान, उनके प्रति किसी प्रकारका बुरा आचरण अथवा कटु वाक्यका प्रयोग मत करना । अन्यथा—दया, क्षमा नहीं पाओगे—अत्यन्त कठिन दण्ड पाओगे । जाओ—"

बारहवाँ परिच्छेद ।

"नसीर !"

"जहाँपनाह !"

"नसीर—सब वृथा हुआ ।"

"क्या वृथा हुआ, हजूर ?"

"मेरा उद्यम, कौशल, परिश्रम सब व्यर्थ हुआ । नवाबका कठोर आदेश, इसी समय राजा अमरप्रसादको मुक्त करनेके लिए है ।"

"यह क्या, नवाबने कैसे जाना कि राजा बन्दी हुए हैं ?"

"यह नहीं जानता । किसने कहा—यह भी कुछ नहीं जानता ।"

"हमने जिस कौशलसे उसको बन्दी किया है, यह भी क्या नवाब जानते हैं ?"

"ना ! मुझसे इस विषयमें उन्होंने प्रश्न किया, मैं'ने उत्तरमें कहा कि वे युद्धक्षेत्रमें बन्दी हुए हैं । नवाबने इसपर विश्वास किया या नहीं, नहीं जानता, तौ भी इसी क्षण राजाको मुक्त कर देनेका आदेश कठोर भावसे मुझको दिया है । नसीर, अब क्या उपाय है ?"

उपाय तो कुछ भी समझमें नहीं आता। वरन् सन्देह और शोकसे उपाय, निरुपाय होकर दूर चला जा रहा हूँ। इतने बड़े पठानोंके एक राहुरूपी शत्रुको क्यों कुशाग्र बुद्धि नवाब मुक्त कर रहे हैं, यह तो कुछ भी समझमें नहीं आता। यह मानो एक महा रहस्यमय—वास्तवमें यह एक महा रहस्यमय घटना है। निश्चय ही इस मुक्ति-दानमें कुछ न कुछ रहस्य अवश्य है। किन्तु यह रहस्य क्या है, वह हजार वार सोचने पर भी विदित नहीं होता।"

"कुछ भी रहस्य क्यों न हो, नवाबके अखण्डनीय आदेशके अनुसार हमें राजाको मुक्त करना ही पड़ेगा। ओह! जिस काफिरको घृणाकी दृष्टिसे देखता हूँ;—तुच्छ जान कर जिस काफिरकी उपेक्षा कर रहा था, उसी काफिरके निकट हीनता स्वीकार कर, उसको मुक्त करना होगा! जिस काफिर के निकट बारबार पराजित हुआ हूँ,—जिस काफिरके अपमानसे मेरा सर्वांग ज्वालामय हो रहा है, उसी काफिरकी बिना हत्या किये, बिना बदला लिये—आज मुझे सम्मानसे साथ उसे मुक्त करना होगा। नसीर—नसीर! इस अपमानके मरनेकी इच्छा उत्पन्न होती है। नसीर! इस अपमानजनक मृत्युसे उद्धारका क्या कोई भी उपाय नहीं है?"

हाथसे हाथ मलकर चापलूस नसीरने क्षणिक विचारके पश्चात् कहा—"एक उपाय है, जहांपनाह!"

उत्साहपूर्वक रुस्तमने कहा, "है? उपाय है? नसीर—नसीर! शीघ्र कहो, उपाय क्या है?"

"राजाको मुक्त कर, आज ही मार्गमें घातक के द्वारा हत्या—"

"असम्भव।"

"असम्भव क्यों हुजूर ?—गम्भीर, निस्तब्ध अन्धकारमयी रात्रि है,—कोई कुछ नहीं देख सकेगा—जान नहीं सकेगा। सब यही सोचेंगे, कि डाकुओंने राजाकी हत्या की है।"

"नसीर! तुम भ्रममें हो; सब यही सोचेंगे कि मैंने ही राजाकी हत्या की है। नवाब अच्छी तरह जानते हैं, जानते ही क्यों हैं, उस दिन राजाके शिविरमें आक्रमणके समय उन्होंने प्रत्यक्ष देखा है, कि मैं ही राजाका एकमात्र महाशत्रु हूँ। आज रात्रिमें ही सहसा राजाकी हत्याके कारण नवाबके मनमें मेरे प्रति सन्देह होगा। केवल सन्देह ही नहीं होगा, वरन् नवाब निश्चय मुझको कठोर दण्ड देंगे। केवल इतना ही नहीं, राजा अमर-प्रसादकी आकस्मिक मृत्युसे मुगल और राजपूतोंका सन्देह भी पठानोंके ऊपर होगा। जनप्रिय राजाकी हत्यासे समस्त राजपूत जाति कांप उठेगी, तब पठानोंका नाम, पठानोंकी स्मृति भारत-वक्षसे विलुप्त हो जायगी। नसीर! मैं व्यक्तिगत भावसे राजाका शत्रु होता हुआ भी पठानोंका शत्रु नहीं हूँ; पठानोंका अमङ्गल चाहनेवाला नहीं हूँ, वरन् पठानोंका गौरव प्रार्थी हूँ—अपनी जातिके गौरवकी कामना जो नहीं करता, उसका मरना ही श्रेष्ठ है। नसीर! इस उपायके अतिरिक्त, यदि अन्य कोई उपाय हो तो कहो।"

कुछ समय तक चुप रहकर नसीरने कहा, "एक उपाय और है।"

"क्या उपाय है ?"

"आज ही बन्दीकरके, और आज रात्रिको ही, सहसा अयाचित भावसे राजाको मुक्त करनेके कारण राजा सोचेगा,—मुगलोंके भयसे अथवा नवाबके आदेशसे आपने उसको मुक्त किया है, इसीसे और भी अपमान होगा। इसकी अपेक्षा राजाको यहां बुलाकर कहिये—राजा, तुम यदि हाथ जोड़कर मुक्ति भिक्षा मांगो तो मैं दयाकर तुमको मुक्त कर सकता हूँ। शत्रुके अन्धकारागृहमें बन्दी होकर रहना कोई नहीं चाहता ;—राजा निश्चय ही आपके निकट मुक्ति-भिक्षा चाहेगा, उस समय आप उसको मुक्त कर दें। यह आपके लिये कलङ्क नहीं, वरन् गौरव है, और साथ ही नवाबकी आज्ञाका पालन भी हो जायगा।"

"तुम ठीक कहते हो नसीर, यह अत्यन्त सुन्दर युक्ति है। मैं अभी राजाको यहां भेजनेके लिये कारागारके पहरेदारको आज्ञा पत्र भेजता हूँ।"

आज्ञापत्र लिखकर रुस्तमखांने पुकारा, "कोई है ?"

अभिवादन करता हुआ एक रक्षक आकर रुस्तमखां के सम्मुख खड़ा हुआ। रुस्तमखांने आज्ञा पत्र पहरेदारके हाथमें देकर कहा, "यह फरमान कारागारके दारोगाके पास ले जाओ—"

चुपचाप आज्ञापत्र लेकर पहरेदारने प्रस्थान किया।

अब कुछ प्रसन्न होकर और मुस्कुराकर रुस्तमखांने अपने प्रिय अनुचर नसीरसे कहा, "नसीर, इसीलिए तुम मेरे इतने प्रिय हो। तुम्हारी मंत्रणा, तुम्हारे परामर्श, और तुम्हारे कौशलने सैकड़ों बार मुझको अन्धकारमय पथसे प्रकाशमें ला रखा है। सैकड़ों बार सैकड़ों विपदाओंमें तुम सहायक हुए हो, इसीलिये तुम मेरे इतने प्रियपात्र हो।"

प्रसन्नतापूर्वक नसीरने कहा, "यह आपकी दया है। प्रभुका मंगल-साधन प्रत्येक सेवकका कर्त्तव्य है। इसीलिये जो कुछ मैंने किया है—वह मेरा कर्त्तव्य ही है।"

इतने ही में शृङ्खलाबद्ध राजा अमरप्रसादने शिविरमें प्रवेश किया। उनके दोनों ओर सशस्त्र पहरेदार हैं। राजाको देखकर गम्भीरतापूर्वक रुस्तमने कहा, "काफिर—मैं तुम्हारी ही अपेक्षा कर रहा था।"

उपेक्षापूर्ण कण्ठसे राजाने कहा, "यह सुनकर प्रसन्न हुआ हूं रुस्तम, कि तुम मेरी ही अपेक्षा कर रहे हो। जब अपेक्षा कर रहे हो तब यह निश्चय है कि मेरी मृत्युकी व्यवस्था स्थिर कर ली है, मैं भी यही चाहता हूं—अभी तक पठानोंके छूए हुए जलका भी मैंने स्पर्श नहीं किया है और न करूंगा—स्पर्श करनेके प्रथम ही मृत्यु चाहता हूँ। कहो रुस्तम—मेरी मृत्युकी क्या व्यवस्था की है?"

"वह व्यवस्था सुनकर तुम्हारा सर्वाङ्ग कम्पित हो उठेगा।

किन्तु काफिर, तुम यदि घुटने टेक कर मुक्ति भिक्षा चाहो तो मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण कर सकता हूं।"

उन्नत वक्ष, उन्नत मस्तक एवं उच्च कण्ठसे राजाने कहा,—"घुटने टेककर मुक्ति भिक्षा ! किसके निकट ?"

अभिमानपूर्वक रुस्तमने कहा, "मेरे निकट !"

"कभी नहीं रुस्तम, इस कल्पनाको दूर करो। स्वप्नमें भी ऐसा विचार मत करो कि राजा अमरप्रसाद तुम्हारे समान कापुरुष, तस्करके निकट मुक्ति भिक्षा लेकर प्राणरक्षा करेगा !"

"और यदि मैं तुमको मुक्त कर दूं राजा ?"

शङ्काकुल हृदयसे रुस्तमने देखा कि राजपथमें स्वयं नवाब खड़े हैं। कम्पित देहसे आसन परित्याग कर रुस्तमने भूमि स्पर्श कर अभिवादन किया। भयभीत नसीरने अभिवादन कर एक कोनेमें आश्रय लिया। दोनो पहरेदारोंने सम्मानके साथ नवाबको अभिवादन किया और राजाको छोड़ कर अलग खड़े हो गये।

राजा अमरप्रसाद विस्मयसे नवाबकी ओर देखते रह गये।

नवाबने किसी ओर भी दृष्टिपात न कर, गम्भीरतापूर्वक अग्रसर हो कर, राजाकी शृङ्खला स्वयं अपने हाथोंसे खोलते हुए कहा "राजा तुमको लोहेकी शृङ्खलासे मुक्त कर, अपनी प्रीतिके बाहु बन्धनसे आबद्ध करता हूं।"

वास्तवमें राजा नवाबके बाहु-पाशमें आबद्ध हो गये।

रुस्तम उस समय भयभीत होकर ईश्वरका नाम स्मरण कर

रहा था। एकबार यदि राजा अपने बन्दी होनेका कारण नवाब से कहते, तो सब छल कपट खुल जाता। नवाबकी क्रुद्ध दृष्टि उसी समय उसको भस्म कर देती,—इसलिये थरथराता हुआ रुस्तम ईश्वरका नाम स्मरण कर रहा था।

राजाको आलिङ्गन-पाशसे मुक्तकर नवाबने कहा, "राजा तुम्हारी पवित्र देहका स्पर्श कर मैं आज धन्य हुआ हूं।—जाओ, राजपूतोंके गौरव स्तम्भ—वीरत्वके दीप्तसूर्य, तुम मुक्त हो। पहरेदार,अश्वरक्षकको अभी मेरी आज्ञा सुनाकर कहो,—इसी क्षण राजाको एक उत्तम सुसज्जित घोड़ा दो, और तू रक्षक-स्वरूप, राजाके साथ जाकर निर्विघ्न राजाको उनके शिविरमें पहुंचानेमें समर्थ नहीं होगा तो तुझे प्राणदंड मिलेगा।" इसके पश्चात् राजाको लक्ष्य कर नवाबने कहा, "अब विदा दीजिए, राजा! कल युद्धक्षेत्रमें पुनः मिलन होगा।"

"पठानपति, तुम्हारे इस महत्वसे सुखी नहीं हुआ हूं।"

"क्यों, राजा!"

"महत्वके निकट वीरत्व भी पराजित हो जाता है। शत्रुको इस भावसे मुक्त करना, प्रीतिके आलिङ्गनसे आवद्ध करना—यह केवल कल्पनामें ही सम्भव था। वही कल्पना आज प्रत्यक्षः देख रहा हूं। नवाब, तुम्हारे इस देव-दुर्लभ महत्वके निकट मेरे वीरत्वका गर्व खर्व हो गया है। इच्छा होती है, कि कर्त्तव्य-विवेक सबको जलाञ्जलि दे कर, इसी

महत्वकी पूजा करूँ। किन्तु, किन्तु—कर्त्तव्यकी कसौटीसे तुम मेरे और मैं भी तुम्हारा परम शत्रु हूं।"

मुसकुराकर नवाबने कहा, "ऐसा रणस्थलमें है, यहां नहीं। यहां तुम मेरे परम मित्र—परमात्मीय हो। कर्त्तव्य कर्म सम्पादन करनेसे शत्रु नहीं होता, तुमने जब भारतवर्षमें मुगलोंकी प्रतिष्ठा स्थापित करनेके लिए शस्त्र धारण किया है, तब उसी कार्यके सम्पादनमें, वीरत्वकी विजय-वैजयन्ती आकाशमें फहरा कर,—जगत्‌वासियोंके पूजापात्र होओ।" नवाब इतना कह कर कमरेके बाहर चले गये।

तेरहवाँ परिच्छेद।

आज अन्तिम युद्ध है। आज विजय-लक्ष्मी जयमाल पहिना कर बंगालके भाग्य-विधानका निर्णय करेगी,—इसलिए आज उभय पक्ष जीवनकी ममता छोड़ कर रणोन्मत्त हो रहे हैं। सेनापतियोंके उत्साहित वाक्योंसे चारों दिशाएं कांप रही हैं।

केसरीके समान रुस्तमखांका आक्रमण व्यर्थ कर राजा अमरप्रसादने कहा, "रुस्तमखां, आज अकेला नहीं हूँ—अथवा आज एक क्षुद्र काठका टुकड़ा मेरा शस्त्र नहीं है—बहुत

मनुष्योंके शोणितसे रङ्गी हुई, वीरत्व-विभूषित, तीक्ष्ण तलवार आज मेरे हाथमें है। तुम्हारे जीवनका आज अन्तिम दिवस है।"

"मरूँगा, यह सत्य है, किन्तु तुमको बिना मारे नहीं मरूँगा। इसी रणक्षेत्रमें तुम्हारी जीवनरूपी यवनिका का पतन होगा।"

"रण-मृत्यु क्षत्रियोंके लिए अत्यन्त गौरवकी मृत्यु है। किन्तु जब तुम मेरे प्रतिद्वन्दी हो, तब ऐसा सौभाग्य मुझको प्राप्त नहीं होगा।"

"भूल कर रहे हो! तुमको यह सौभाग्य प्राप्त होनेको ही है।"

यह कह कर रुस्तमखांने राजाके शिरको लक्ष्य कर भीषण खड्ग उठाया। कौशली राजा शिक्षित घोड़ेको इशारेसे चला कर, लक्षित स्थानसे किञ्चित पीछे हट गये।

रुस्तमखांकी तलवार जोरसे उसीके घोड़ेके ललाट पर गिरी, घायल होकर घोड़ा चित्कार कर उछल पड़ा,—रुस्तमखां घोड़ेकी पीठसे गिर पड़े।

यह सुअवसर राजाने अपने हाथसे नहीं जाने दिया।

उन्होंने अत्यन्त कौशलसे रुस्तमके हृदयको लक्ष्य कर कृपाणसे आधात किया! विकट चित्कार कर रुस्तम भूमिमें गिरा।

अब करुण-हृदय राजा स्थिर न रह सके। घोड़ेसे उतर

कर उन्होंने जननीके समान—अर्द्धांगिनीके समान—चैतन्यहीन रुस्तमका मस्तक अपनी जङ्घापर रख लिया।

शत्रु-मित्र, हिंसा-द्वेष भूल कर, राजा यह महिमामय किन्तु करुण, उज्वल किन्तु म्लान, स्वर्गीय किन्तु लोमहर्षण दृश्य देखने लगे।

राजाने अपने एक सैनिकको बुलाकर शीघ्र जल लानेके लिए भेजा। नदी दूर नहीं है; सैनिक राजाकी आज्ञासे पानी ले आया।

राजाने बड़े यत्न और सावधानीसे रुस्तमका घाव उत्तम रूपसे धो कर अपना ही गरम कपड़ा फाड़कर बांध दिया।

राजाकी आन्तरिक सुश्रूषासे रुस्तमने शीघ्र चैतन्य लाभ किया। धीरे धीरे आंखें खोल कर रुस्तमने देखा—राजाकी जङ्घापर मस्तक है, घाव भी बन्धा हुआ है।

राजाके मुंहकी ओर कुछ समय तक निर्निमेष दृष्टिसे देख कर क्षीण कण्ठसे रुस्तमने कहा, "राजा!" जो जिह्वा काफिर कह कर भी तृप्त न होती थी, उसी जिह्वासे राजा शब्द उच्चारित होनेके कारण वास्तवमें अमरप्रसादको बड़ा विस्मय हुआ।

उत्तर न पाकर रुस्तमने पुनः कहा, "राजा!"

"क्यों वीर, क्या बड़ी यातना हो रही है?"

"नहीं राजा, बड़ा ही सुख अनुभव कर रहा हूं।"

"तब क्या कहना चाहते हो?"

"यह क्या देख रहा हूं, राजा?"

क्या देख रहे हो सेनापति ?"

"कैसे, किस प्रकार समझाऊँ, कि क्या देख रहा हूं। यह दृश्य, यह चित्र जीवनमें कभी नहीं देखा, देखनेकी आशा भी नहीं थी, कल्पना भी नहीं की थी—स्वर्गीय, पवित्र, मधुर महान —वही अत्युज्वल दृश्य, वही अचिन्तनीय चित्र आज प्रत्यक्ष देख रहा हूं!—किन्तु दुःखका विषय है, प्राण, हृदय तृप्त कर यह दृश्य देखनेका अवसर नहीं है, बुलावा आया है, इसी समय उस दयामयके निकट जाना होगा।"

"निराश क्यों होते हो वीर, शिविरमें चलो,—चिकित्सासे आरोग्य लाभ करोगे।"

"यह असम्भव है! मैं खूब समझ रहा हूं—दिव्य दृष्टिसे मैं अच्छी तरह देख रहा हूं—महाकाल मुझको ले जानेके लिए दौड़ा चला आ रहा है। किन्तु महाकालको निकट जान कर भी मैं भयभीत नहीं हूं—यह मेरी अत्यन्त शान्तिमय सुख-मृत्यु है। आज एक नया सूर्य—नये प्रकाशकी छटा—नेत्रोंके सम्मुख उदय हो रही है। एक स्वर्गीय मधुर भावसे मेरा हृदय भरपूर हो रहा है—मलय समीरकी अपेक्षा अति शान्त, कोमल, स्निग्ध वायुसे—समस्त शरीर पुलकायमान और रोमांचित हो रहा है। एक दयावान—महाप्राण देवताके पवित्र स्पर्शसे मेरे अभ्यन्तरका समस्त जंजाल और अन्धकार दूर हो कर—नये प्रकाशकी किरणोंसे परिपूर्ण हो गया है। राजा, राजा! तुम मनुष्य नहीं देवता हो!"

"देवता तो नहीं, बोध होता है ठीक मनुष्य भी नहीं हूं।"

"तुम मनुष्य नहीं हो तो संसारमें मनुष्य है कौन? तुम संसारके शिक्षादाता—वसुन्धराके गौरव—राजपूतोंकी कीर्ति हो। तुम आर्तोंके भयत्राता—सङ्कटापन्नोंके उद्धारकर्त्ता, दरिद्रोंके अन्नदाता हो। तुम पतितोंके उद्धारक, पापियोंके धर्मके द्वार—नरकगामियोंके रक्षक हो। वास्तवमें तुम मनुष्य नहीं हो राजा—देवता हो। तुमको सहस्र सलाम।"

"मुझको देवताओंके आसनमें बिठाना—उस आसनको अपवित्र करना है; देवताके नामसे सम्बोधन करना, उनके नामको कलङ्कित करना है रुस्तम।"

"वह आसन और भी पवित्रताकी ज्योतिसे उज्वल हो उठेगा,—तुम्हारे नामसे देवताका नाम भी अतुल श्री-विमण्डित होगा। राजा, मैं महापापी, महातापी हूं;—इसलिए तुमको, न पहिचान कर, न समझ कर, ईर्षा और क्रोधसे अधीर हो, शैतानके समान तुम्हारी हत्या करनेके लिए उद्यत था। तुम महात्मा—महापुरुष हो,—इस अन्तिम समयमें मेरे समस्त अपराधोंको भूलकर, मुझको क्षमा करो राजा!"

"मैंने अन्तःकरणसे तुम्हारे समस्त अपराध क्षमा कर दिए हैं, भाई!"

"बस, अब मैं निश्चिन्त हूं। तुमसे और क्या कहूं राजा,—तुम—तुम—धन्य हो। दयावान देवता, जब तुमने क्षमा कर ही दिया है, तो अनन्त—पथ—यात्री पापीको

आशीर्वाद भी दो। अशीर्वाद दो राजा—जिससे जन्मान्तरमें भी तुमको ही शत्रु रूपसे, देवता रूपसे पाऊं,—जिससे वीरत्वकी पूजा कर,—युद्धक्षेत्रमें वीरके समान शस्त्रोंके तकिये पर शिर रख कर मर सकूं। अशीर्वाद दो राजा, जिससे राजपूतके संकेतसे सीधा होकर संसारमें खड़ा हो सकूं, जिससे मनुष्य कहला कर संसारमें प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकूं। आशीर्वाद दो राजा—जिससे कर्त्तव्यकी भीषण पुकारसे समस्त विश्वको जागरित कर सकूं, जिससे राजपूतोंकी दया—आतिथ्य प्रभृति महत् गुण प्राप्त कर—सूर्यके समान उज्वल प्रकाशसे उदय होकर संसारको उज्वल कर सकूं।"

रुस्तमखांका कण्ठ रुँध गया, राजाने पुकारा, "रुस्तमखां ?"

उत्तर कुछ नहीं मिला।

पुनः राजाने कहा, "रुस्तमखां ?"

फिर भी उत्तर नहीं। उत्तर देनेवाला उस समय महाशून्यमें चला गया था।

चौदहवाँ परिच्छेद।

कूट-बुद्धि, कूट-नीति विशारद, कौशली मुगल-सेनापति हुसेन कुलीखांके आक्रमणसे—प्रत्येक पलमें दलके दल पठान सैनिक भूमिमें गिरने लगे। नवाब दाऊदखांने सोचा—मुगलों

की जय अनिवार्य है, पठानोंकी आत्मरक्षा भी असम्भव है। वास्तवमें पठान असीम साहसी हैं—उन्होंने अटल मेरुके समान खड़े होकर मुगलोंके शस्त्रोंको छातीसे लगा लिया,—कोई तिलमात्र भी पीछे नहीं हटा।

विशाल शक्ति-बलके ह्राससे नवाबका हृदय चिन्तासे दहल उठा।

इसी समय रुस्तम-विजयी वीर, राजा अमरप्रसादने अपनी सेना सहित सेनापतिके सहायतार्थ आकर पठान सेनाके ऊपर आक्रमण किया।

नवाबके हृदयके एक कोनेमें,—जो अब तक एक क्षीण, म्लान, आशा-रश्मि निर्वाणोन्मुख दीपकके समान टिमटिमा रही थी, इस समय वह भी सम्पूर्ण रूपसे बुझ गयी। नवाबने सोचा—अब पठानोंकी रक्षा असम्भव है, नवाब निराश हो गये।

सहसा आशादेवीने कोमल, मधुर मृदु स्वरसे नवाबसे कहा, बगेश्वर! वृथा क्यों निराश होते हो! इस बार पराजित होने पर भी—पुनः अन्य युद्धमें विजयी हो सकते हो, तब क्यों मुझे विदा कर रहे हो? भाग जाओ, पहले युद्धसे भी तो भागे थे—तभी और कुछ दिन नवाबी करली है,— इस समय भी भाग जाओ, सम्भवतः—दूसरे आक्रमणमें मुगलोंको बंगालसे निकाल कर नवाबी करोगे, अन्यथा, इसमें क्षति ही क्या है? तब तो कुछ समय तक जीवित भी रह सकोगे—इसलिये कहता हूं, मुझको विदा मत करो और भाग जाओ,—मैं तुम्हारे हृदय और नसोंमें जुड़ी रहुंगी, तुम भाग जाओ।

नवाबने सोचा, यही ठीक है—भागनेके अतिरिक्त और कुछ उपाय नहीं। अब नवाब भागनेकी चिन्ता करने लगे। बहुत चिन्ताके पश्चात्—एक अत्यन्त सुन्दर उपाय सूझ पड़ा।

युद्ध उसी प्रकार होता रहा। नवाब केवल—कतिपय निर्दिष्ट सैनिकोंको लेकर क्रमशः धीरे धीरे पीछे हटने लगे। नवाबकी यह चतुराई कोई नहीं समझ सका। अन्तिम सैन्य श्रेणीको पारकर नवाबने बड़ी तेजीसे घोड़ा भगाया, पीछेसे वही थोड़े सैनिक रक्षक-स्वरूप चले।

यह देखकर उच्चकण्ठसे गरजकर मुगल सेनापतिने कहा,—"नवाब, नवाब, भागो मत—संसारके किसी भी स्थानमें भाग कर क्यों न चले जाओ,—मुगलोंके हाथसे किसी प्रकार भी बच नहीं सकोगे।"

नवाब उस समय बहुत दूर निकल गये थे। सेनापतिके वाक्य आकाशमें विलीन हो गए।

सेनापतिने पुनः उच्च कण्ठसे कहा, "राजा—राजा—नवाब भाग गया है,—तुम अपनी राजपूत सेना लेकर नवाबका पीछा करो। नवाब यदि आज अपने प्राण लेकर भागनेमें समर्थ हो गया, तो तुम्हारे हृदयके शोणितसे मुगल अपना क्रोधानल निर्वापित करेंगे। जाओ—वायुके समान जाओ—नवाबको पकड़कर लाओ। मैं भी इन पठानोंका संहारकर तुम्हारा अनुसरण करूंगा,—तुम अग्रसर होओ!"

इस प्रकारके अनादरयुक्त और क्रूर, आदेशसे, राजाका

हृदय कुछ समयके लिए चंचल हो उठा, संयमी राजा चित्त संयम कर राजपूत सैन्यके साथ चारों दिशाओंको धूलसे अन्धकारमय करते हुए नवावके पीछे दौड़ चले।

सामने कल्लोलयुक्त, कोलाहलमयी विशाल नदी है—नदीके ऊपर पुल है। नवाब शीघ्र पुल पार होकर उसको तोड़नेकी आज्ञा दे गये।

पठान पुल तोड़नेके लिए उद्यत हुए। इसी समय उस पार राजा अपनी सेना लेकर उपस्थित हुए। पठानोंका पुल तोड़नेका कार्य सम्पूर्ण नहीं हुआ। राजाने बड़ी तेजीसे घोड़ा दौड़ाया। पठान यदि एकबार भी किसी प्रकार पुल तोड़नेमें समर्थ होते, तो सम्भव था कि दाऊदका शिर धड़से जुदा नहीं होता—ऐसा होनेपर सम्भव था कि पठानोंका भाग्य अन्य रूप धारण करता—किन्तु होनहार बलवान है।

राजा सेना सहित पुल पार हो जानेके लिए उद्यत हुए। सहसा एक बालकने सेतुके सम्मुख घोड़ेकी पीठपर नङ्गी तलवार हाथमें लिये हुए, उपस्थित होकर दृढ़ कण्ठसे कहा,—"बिना मेरा वध किये कोई भी एक कदम अग्रसर न हो सकेगा राजा—"

आश्चर्यचकित होकर राजाने घोड़ेको रोककर बालकके तेजयुक्त चेहरेकी ओर देखा। यह क्या! यह मानो चिरपरिचित मुंह है! विस्मयके साथ राजाने कहा,—"यह क्या, रानी! ऊर्मिला, तुम इस भावसे—इस भेषमें—इस मृत्युमुखरूपी रणक्षेत्रमें क्यों आई हो?"

"इसके पहिले मैं प्रश्न करती हूं,—तुम यहां क्यों आये हो राजा ?"

"मैं आया हूं कर्त्तव्य-पालनके लिये।"

"मैं भी कर्त्तव्य-पालनके लिये आई हूं।"

"तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है ?"

"सन्तान-रक्षा—सत्य रक्षा—आश्रयार्थीकी रक्षा करना।"

"तुम्हारी सन्तान कौन है ?"

"नवाब दाऊदखां।"

"मुझको तुम्हारी उसी सन्तानको पकड़नेकी आज्ञा हुई है। न्याय और धर्मके अनुसार मैं उस आज्ञाका पालन करनेके लिये वाध्य हूं। रानी, हट जाओ, विलम्ब होनेसे नवाबको नहीं पकड़ सकूंगा।"

"मैंने भी जब नवाबको पुत्र कहकर अभय दान दिया है—तब धर्मतः नवाबकी रक्षा करनेके लिये मैं भी वाध्य हूं। प्रथम मेरी हत्या करो, तब अपनी सेनाको आगे बढ़ाओ राजा—"

"यह क्या! यह नहीं हो सकता रानी—स्वामीके कर्त्तव्यमें विघ्न करना सहधर्मिणीका कार्य नहीं है।"

"किन्तु यह भी धर्म है।"

"धर्म! धर्मकी अपेक्षा भी क्या स्वामी श्रेष्ठ नहीं है ? हिन्दू ललनाके निकट क्या स्वामी—देवता कहकर पूज्य नहीं है ?"

"यह सत्य है। किन्तु देवता कहकर धर्म, धर्म कहकर

जो देवता समझा जाता है स्वामी। धर्मके अतिरिक्त किसी भी देवताकी प्रीति अथवा दया नहीं प्राप्त हो सकती—धर्महीनके प्रति त्रिभुवन घृणा करता है। सैकड़ों बात, सैकड़ों मिथ्या—सैकड़ों हत्याकर देवताको आह्वान करता हुआ भी वह कभी मुक्तिके पथमें नहीं जा सकता।"

"यदि वह भक्ति पूर्वक ईश्वरको पुकारे?"

"तब भी नहीं—तब भी उसको कृतकर्मोंके फलका भोग करना ही पड़ेगा—नरक यातनासे फिर भी उद्धार नहीं हो सकता। देवताकी शक्ति नहीं जो उसको मुक्तिके मार्गपर ला सके। यह प्रत्यक्ष है कि धर्मस्वरूप राजा युधिष्ठिरको भी, अर्द्धोच्चारित सामान्य मिथ्या वाक्यके लिये नरककी विभीषिका देखनी पड़ी थी। देवीके लिये सुरथ राजाने लाखों पशुओंका बलिदान किया था,—लक्ष पशुओंने लक्ष बार उसका संहार किया, देवी भी उसकी रक्षा न कर सकी। किन्तु धर्म-कार्य सम्पादन करनेसे देवता पाया जाता है, यह शिक्षा तुमहीने दी है नाथ, तब क्यों आज ऐसा कहते हो! आश्रितकी रक्षा करना ही धर्म है, उसी धर्मका पालन करनेके लिये मैं आज तुम्हारे विरुद्ध खड़ी हूं—आओ स्वामी, आक्रमण करो।"

रानीकी अखण्डनीय युक्तिके निकट राजा चुप हो गये और महा चिन्तामग्न होकर कर्त्तव्य निर्धारण करनेमें असमर्थ हो गये। एक ओर कर्त्तव्यका कठोर आह्वान, दूसरी ओर धर्मपरायणा रमणी हत्या, अर्द्धाङ्गिनीका प्राणनाश! एक

ओर कर्त्तव्यकार्यकी अवहेलनासे महा नरक, दूसरी ओर नारी हत्याका अनन्त पाप संचय ! क्या करूँ, किस ओर जाऊँ, कौन बड़ा है ? अर्द्धाङ्गिनी—या—कर्त्तव्य ! किसीने मानो जोरसे राजाकी छातीको हिलाकर कहा, "कर्त्तव्य ! कर्त्तव्य ! सैकड़ों राज्य, सहस्र पत्नियोंकी अपेक्षा भी कर्त्तव्य बड़ा है।"

जिस पुष्प-तनुमें पुष्पके आघातसे भी चोट लगकर लालिमा छा जाती है, उसी अङ्गपर कठोर तलवारका प्रहार करना होगा। जिस कोमल हृदयमें प्रीतिका झरना, प्रेमका प्रवाह, करुणाकी निर्झर धारा बह रही है, उसी हृदयको अपने ही हाथसे चीरना होगा। जिस कनक-प्रतिमाकी, हृदयकी आराध्य देवीरूपसे पूजा की हैं, उसी मूर्तिको चूर्ण करना होगा। जो बाहु—सैकड़ों बार केवल प्रेमालिङ्गनके लिये ही प्रसारित होते थे—वे ही आज प्रेम-मूर्तिके वधके लिये भीषण खड्गका आघात करेंगे। बोध होता है, ऐसा अस्वाभाविक, ऐसा निर्दय कार्य—संसारके इतिहासमें और कहीं नहीं है। उद्भ्रान्त भाव और उच्च कण्ठसे राजाने कहा,—

"नहीं—नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकता—किसी तरह ऐसा नहीं कर सकता। कर्त्तव्य गम्भीर समुद्रके गर्भमें चला जाय, धर्म कर्म सब डूब जायें, सब अतल सलिलमें डूब जायें, मनुष्यत्व-विवेक सब रसातलको चले जायें ! तो भी यह नृशंस कार्य नहीं कर सकूंगा।"

"छि राजा यह दौर्बल्य तुमको शोभा नहीं देता"

विस्मयके साथ राजाने देखा कि पीछे घोड़ेकी पीठ पर सवार, नंगी तलवार लिये हुई, तेजोमयी सुगठित एक अपूर्व रमणी मूर्ति है।

रमणीने पुनः कहा, "राजा मैं तुम्हारा मार्ग साफ कर देती हूं, उसी मार्ग पर अपना घोड़ा दौड़ाओ, तुम्हारे घोड़ेके प्रत्येक पदके नीचे कोमल कमल खिल उठे, और तुम्हारे प्रत्येक वारमें तुम्हारी वीरत्व-कीर्त्ति झलक उठे—यही मेरी प्रार्थना—कामना है।

इसके पश्चात् रानीके सन्मुख आकर रमणीने कहा, "भगिनी!"

"शोभना! बहिन! यह रणरंगिनी मूर्ति, रणरंगिणी वेश किस लिए है बहिन!"

"बहिन आज इसकी आवश्यकता हुई है। तुमने जिस प्रकार धर्मके लिए स्वामीके विरुद्ध शस्त्र धारण किया है, मैंने भी उसी प्रकार, धर्म जान कर स्वामीका कर्त्तव्य-पथ प्रसारित करनेके लिये शस्त्र धारण किया है,—मेरी पुण्यमयी भगिनी, आओ, आओ मेरी गौरवमयी रानी,—आक्रमण करो! आज शक्तिका शक्तिके साथ संघात—संसारके ऊपर महा आन्दोलन का प्रभंजन प्रवाहित करो।"

"ऐसा ही हो बहिन! यह संघात संसारमें चिरकाल तक स्मरणीय रहे। आओ बहिन, आओ पातिव्रतकी आदर्शमयी देवी, अपने पवित्र आलिङ्गनसे मुझको पवित्र करो।"

दोनों घोड़ोंसे उतरकर एक दूसरेके आलिङ्गन पाशमें आबद्ध हुए।

राजा बड़े विस्मय और कौतूहलपूर्ण दृष्टिसे इस अपार्थिव अलौकिक महिमामय दृश्यको देखने लगे।

वास्तवमें वह अत्यन्त महिमापूर्ण दृश्य था।

क्या कहीं नरनारी हैं—आओ, शीघ्र आओ, यह पुण्यछवि, पुण्यधाममें चले जानेके पूर्व, हृदय भरकर—नयन भरकर निरख लो। देखलो,—दो स्वर्गीय हृदयोंका मिलन,—दो पतिप्रेम उन्मादिनी नारियोंका ज्वलन्त पति-भक्तिका आदर्श, देख लो, मर्त्यलोकमें दो सजीव देवी प्रतिमाओंकी अलौकिक देवीक्रीड़ा।

बहुत समयके पश्चात् दोनों एक दूसरेके आलिंगन पाशसे मुक्त होकर अपने अपने घोड़ोंपर चढ़, एक दूसरेपर आक्रमणके लिये उद्यत हो गईं।

रानी उर्मिलाबाला, पिताकी आदरिणी एकमात्र कन्या थीं। इसलिये पिताने उनको घोड़ेपर चढ़ने और तलवार चलानेमें सुशिक्षित किया था।

शोभनाका प्रबल आक्रमण व्यर्थ करते हुए रानीने जोरसे शोभनाका हृदय लक्ष कर खड्गाघात किया।

शस्त्र चलानेमें अनभ्यस्ता, अशिक्षिता शोभना उस आघात से अपनी आत्मरक्षा न कर सकी—रानीके शस्त्रने उसका हृदय छेद दिया। शोणितसे लथपथ होकर शोभना घोड़ेकी पीठसे गिर पड़ी।

अनुतप्त—व्यथित कण्ठसे रानीने कहा, "भगिनी, मैं महा पापिनी हूं, मैंही तुम्हारी मृत्युका कारण हुई।"

यातना-दग्ध कण्ठसे शोभनाने कहा, "तुम महा धार्मिका हो. तुमने मुझको मनोवाञ्छित मृत्यु दी है। उस दिन मैंने तुम्हारे निकट यही आशीर्वाद भिक्षा चाही थी, कि मेरी यह देह स्वामीके कार्यसाधनमें विसर्जन हो। स्नेहशीला—शक्तिस्वरूपिणी भगिनी, मेरी वह वासना, वह प्रार्थना तुमने पूर्ण की है, तुमको सहस्र प्रणाम।"

राजाने आश्चर्यचकित होकर पूछा,—

"तुम्हारा स्वामी कौन है?"

म्लान और खुले हुए दोनों नेत्रोंसे राजाके प्रति देखकर क्षीण कण्ठसे शोभनाने कहा, "मेरा स्वामी! मेरा स्वामी—राजा अमरप्रसाद है।"

शोभनाके वाक्यका कुछ भी अर्थ न समझ कर आश्चर्यान्वित भावसे राजाने रानीके प्रति दृष्टिपात कर कहा, "रानी, यह क्या रहस्य है?"

"रहस्य होते हुए भी सत्य है राजा, इस नारीको क्या पहिचानते नहीं? क्या स्मरण नहीं आता—एकदिन एक अबला का डाकुओंके हाथसे उद्धार किया था!"

"हाँ यह स्मरण आता है।

"यह नारी ही उन डाकुओंके हाथमें पड़ी हुई धनकुबेर रुद्रपतिकी एकमात्र कन्या शोभना है। जिस दिन आपने डाकुओंके

हाथसे इसका उद्धार किया, उसी दिनसे इन्होंने आपको देवत जानकर हृदय-कुसुम आसनमें देवताके समान आपकी मूर्ति स्थापित की, और सर्वस्व अर्पण कर, प्रेमभक्तिके अर्घ से आपकी पूजा करती आ रही हैं और आज आपके ही लिये इन्होंने अपने प्राण भी दे दिये हैं।"

पुष्पसे खिले हुए शोभनाके मुंहको टकटकी लगा कर देखते हुए सहसा राजाने कहा, "तब क्या यह वही है।"

इसके उत्तरमें रानीने पूछा, "कौन राजा ?"

"एक दिन सन्ध्याको रणस्थलसे थक कर लौटते समय शत्रुओं द्वारा भीषणरूपसे आक्रान्त होकर निशस्त्र हो गया,—निरुपाय होकर बारम्बार एक शस्त्र-भिक्षा चाहता था, उसी समय एक बालक विद्युतगतिसे आकर मेरे हाथमें शस्त्र प्रदान कर पुनः बिजलीके समान आखोंकी ओट हो गया। रानी ! यह मानो वही है, वही है। कहो,—कहो शोभना, वह बालक क्या तुमही थीं ?

क्षीण कण्ठसे उत्तर मिला, "हां, राजा !"

कृतज्ञतापूर्ण कण्ठसे राजाने कहा, "प्राणदात्री, कृतज्ञ हृदयसे मेरा असंख्य धन्यवाद ग्रहण करो।"

"केवल इतना ही ! प्रेम नहीं—केवल कृतज्ञता, प्राणेश्वरी नहीं—केवल प्राणदात्री !" अभिमानसे शोभनाके दोनों नेत्र फूल गये और वह निःशब्द हो गई।

रानीने पुकारा, "भगिनी !"

उत्तर कुछ नहीं मिला।

राजाने पुकारा, "शोभना !"

फिर भी उत्तर नहीं। उत्तर देनेवाला उस समय रहा नहीं। खेद मिश्रित कण्ठसे रानीने कहा, "और वृथा पुकार कर क्या होगा राजा, दीपक बुझ गया है। स्वर्गकी मन्दाकिनी स्वर्गको चली गई है,—नन्दनका पारिजात, नन्दनमें ही चला गया है। शक्तिका कण शक्तिके साथ मिल गया है। इससे दुःख नहीं, क्षोभ नहीं, यह है—धर्मका महासमारोह, यह है—पतिव्रताकी—पतिभक्तिकी असीम शिक्षा, यह है—भक्ति, प्रेमकी दीक्षा। अपूर्व योगिनीके समान यह है गुण गरिमामयी नारी।"

"सत्य कहती हो रानी, वास्तवमें यह रमणी अपूर्व है —अपूर्व है इसका कार्य, अपूर्व है इसका प्रेम, अपूर्व है इसका आदर्श। यही आदर्श संसारमें प्रथम भी है और शेष भी है।"

"ओह, कहा-सुनीमें ही मेरे कर्त्तव्य कार्यमें अनेक विलम्ब हो गया है। अब विलम्ब मत करो रानी, मार्ग छोड़ दो।"

"कहतो दिया है राजा, बिना मेरी हत्या किये अग्रसर नहीं हो सकोगे।"

"इस गरीयसी, देवी स्वरूपिणी नारी-हत्यासे भी तुम नहीं हटोगी !"

"नहीं सहस्र नारियोंके वधसे भी नहीं हटूंगी।"

इतने ही में सेनासहित मुगल सेनापति आकर उपस्थित हुआ, एक बालकके साथ राजाको बातें करते देखकर सेनापतिने समझा—नवाब पुल पार हो गया है—राजा भी पुल पार जानेको उद्यत है—इसी समय नवाबके सहायतार्थ यह बालक, राजाके विरुद्ध खड़ा हो रहा है, दुर्बल-चित्त राजा बालककी हत्या करनेके लिए अग्रसर होनेमें कुण्ठित हो रहा है। एक हास्यके साथ सेनापतिने कहा, "राजा, यह निर्मम—हृदय—विदारक रणस्थल है—यहां दया, माया, कोमलता कुछ नहीं है—दया, मायाका स्थान अन्तःपुर है—यह रणस्थल है। यहां है केवल वज्रकी कठोरता—कालका ताण्डव नृत्य—मृत्युका भीषण गर्जन। "मुसलमान सैनिक! सेतु-पथको रोकनेवाले घोड़े पर बैठे हुए बालककी हत्या कर सेतुके ऊपर जाओ।"

नवाबके आदेशसे एक साथ बहुतसे भाले—बालक-वेशधारी रानीके ऊपर पड़े।

साक्षात् कालरूपी भालोंने—रानी और उसके घोड़ेको छेद दिया। मार्मिक यातनासे विकट चित्कार कर घोड़ा रानी सहित उस महानदमें कूद पड़ा। राजाको ऐसा प्रतीत हुआ, मानो मध्याह्न मार्तण्ड एक गम्भीर म्लान अन्धकारमें डूब गया,—अन्धकार! हृदयमें अन्धकार! नेत्रोंमें अन्धकार, जगत्में अन्धकार! ज्वाला-जर्जरित हृदयसे अत्यन्त कातर करुण कण्ठसे राजा चिल्ला उठे, "मुझको इस गम्भीर अन्धकार-राज्यमें डाल कर तुम अकेली कहां जाओगी रानी! नहीं, यह नहीं होगा—

तुमको अकेली नहीं जाने दूंगा। -मेरी जीवितेश्वरी—मरण संगिनी !"

यह कहते हुए राजा भी शीघ्रतासे घोड़ेसे नदीकी प्रबल धारामें कूद पड़े। जलने कुछ ऊपर को उठ कर पुनः पूर्वरूप धारण किया।

हिन्दी-साहित्यमें नये अमूल्य रत्न

धर्म-ग्रन्थ-मालासे निम्नलिखित उत्तम और सर्वोपयोगी ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनका हिन्दी संसारमें बड़ा आदर हुआ है।

१ भक्तिका मार्ग—मानव चरित्रको उदार, कर्मवीर धर्मवीर बनानेवाली हिन्दीमें अपने ढंगकी यह पहली पुस्तक है। मूल्य ॥) डाकव्यय पृथक।

कुछ सम्मतियाँ :—

............पुस्तक बहुत अच्छी है। स्वामीजीने भक्तिका मार्ग बहुत ही अच्छे ढङ्गसे समझाया है। भाषा मनोहर और सरल है। —सरस्वती।

............इसे पढ़ कर पाठकोंकी भक्तिवृत्ति जागृत होती है, भाषा भी ओजस्विनी है। पुस्तक संग्रहके योग्य है।

—प्रभा।

२ जीवन और मृत्युका प्रश्न—भावपूर्ण एवं शिक्षाप्रद पुस्तक है। मूल्य ।-)

कुछ सम्मतियां :—

………पुस्तकका विषय मनन करने योग्य है।

—दैनिक भारतमित्र।

…………इसमें बड़े अच्छे ढंगसे सुन्दर और सरल भाषामें भक्ति मार्गका मर्म समझाया गया है।

—कलकत्ता समाचार।

३ आत्म-संयम—विषय नामसे ही स्पष्ट है। मूल्य ।-) डाकव्यय पृथक्।

कुछ सम्मतियां :—

……भाव बड़े उच्च और प्रभावोत्पादक हैं। —प्रताप।

……प्रस्तुत पुस्तकमें कितनी ही ऐसी अमूल्य बातें हैं जिनसे सर्वसाधारण बहुत लाभ उठा सकते हैं। —कर्त्तव्य।

४ शान्ति और आनन्दका मार्ग—इस पुस्तकमें सारगर्भित वेदान्त विषयकी विवेचना की गई है। इसकी भूमिका एक अमेरिकन विदुषीने लिखी है। मूल्य ॥) डाक व्यय पृथक।

कुछ सम्मतियां :—

……वास्तवमें पुस्तक यथा नाम तथा गुण है।

—कर्त्तव्य।

………The more such books are popularised the better. We wish the book all success.

—Prabudha Bharat.

५ देशबन्धु चित्तरञ्जन दास—अहमदाबाद तथा गया की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कांग्रेसके सभापति, त्यागकी ज्वलन्त मूर्ति देशबन्धु दासका यह सचित्र, सामयिक और विस्तृत जीवन चरित्र उनके ही एक आत्मीयका लिखा हुआ है। भूमिका-लेखक हैं "भारतमित्र"-सम्पादक। मूल्य १) डाक व्यय पृथक।

कुछ सम्मतियां :—

......प्रत्येक देशभक्तको इसे एक बार अवश्य पढ़ना चाहिए। —कर्मवीर।

.........The book should command a ready sale amongst Hindi readers who by its perusal will get some idea of the life and career of Deshbandhu Chittaranjan and the present monement.

—The Servant.

शीघ्र प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें :—

बहन। मित्र।	श्रीमती निरुपमा देवी।
राजनीति।	स्वामी प्रज्ञानन्द सरस्वती।
सहजिया।	श्रीविभूतिभूषण भट्टाचार्य्य।
धर्मविज्ञान। प्रेमका मार्ग।	स्वामी विवेकानन्द।

नोट—बाहरकी भी अच्छी पुस्तकें हमारे यहां मिलती हैं। सूचीपत्र मँगा कर देखिये।